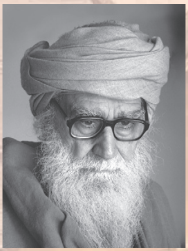
क़ुरआन की महिमा



मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

इस संग्रह में कुरआन के तीन पहलुओं पर संक्षिप्त बातचीत की गई है। एक यह कि कुरआन अपने आपमें इस बात का सबूत है कि यह ईश्वर की किताब है। अब सवाल यह है कि कुरआन की वह कौन–सी विषेशता है, जो इंसान के लिए अनुकरणीय नहीं है। इसके विभिन्न पक्ष हैं। यहाँ हम इसके केवल एक पक्ष की चर्चा करेंगे, जिसका वर्णन कुरआन में इन शब्दों में किया गया है "क्या लोग कुरआन पर ग़ौर नहीं करते और अगर वह ईश्वर के सिवा किसी और की तरफ़ से होता तो वे इसके अंदर बड़ा विरोधाभास पाते।" दूसरा यह कि वह उसी शुरुआती रूप में पूरी तरह से सुरक्षित है, जैसा कि वह सातवीं शताब्दी में पैग़ंबरे–इस्लाम हज़रत मुहम्मद को मिला था। तीसरा यह कि कुरआन सच्चाई की ओर निमंत्रण देने की एक किताब है और इसके निमंत्रण में इतनी ताक़त है कि जब भी इसे सही रूप में दुनिया के सामने लाया जाएगा तो वह दुनिया के लोगों को मंत्रमुग्ध कर देगा।



मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान 'सेंटर फार पीस एंड स्प्रिचुएलिटी', नई दिल्ली के संस्थापक हैं। मौलाना का मानना है कि शांति और आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : आध्यात्मिकता शांति की आंतरिक संतुष्टि है और शांति आध्यात्मिकता की बाहरी अभिव्यक्ति। विश्वशांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त है।

CPS International
centre for peace & spirituality
www.cpsglobal.org

Goodword
www.goodwordbooks.com

ISBN 978-81-943663-0-0
9 788194 366300

क़ुरआन की महिमा

लेखक

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

अनुवादक

मोहम्मद ख़ादिम

संपादन टीम

मोहम्मद आरिफ़

ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी

मौलाना फ़रहाद अहमद

इमरान अहमद इस्लाही

Translation of urdu book *Azmat e Quran*
By Maulana Wahiduddin Khan

Also translated in English in two parts as:
'Quran an Abiding Wonder' and 'The Call of the Quran'

First published in 2019

Centre for Peace and Spirituality
1, Nizamuddin West Market
New Delhi-110013
Tel. +9111-41431165
email: info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

Goodword Books
1, Nizamuddin West Market
New Delhi-110013
Tel. +9111-41827083
Mob. +91-8588822672
email: info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com

Printed in India

विषय सूची

भूमिका

इस संग्रह में क़ुरआन के तीन पहलुओं पर संक्षिप्त बातचीत की गई है। एक यह कि क़ुरआन अपने आपमें इस बात का सबूत है कि यह ईश्वर की किताब है। दूसरा यह कि वह उसी शुरुआती रूप में पूरी तरह से सुरक्षित है, जैसा कि वह सातवीं शताब्दी में पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद को मिला था। तीसरा यह कि क़ुरआन सच्चाई की ओर निमंत्रण देने की एक किताब है और इसके निमंत्रण में इतनी ताक़त है कि जब भी इसे सही रूप में दुनिया के सामने लाया जाएगा तो यह दुनिया के लोगों को मंत्रमुग्ध (spellbound) कर देगा।

क़ुरआन से पहले भी ईश्वर की ओर से बहुत-सी आसमानी किताबें भेजी गई थीं, फिर इसमें और दूसरी आसमानी किताबों में क्या अंतर है? क़ुरआन और दूसरी आसमानी किताबों में जो अंतर है, वह इस दृष्टि से नहीं है कि एक पूरी है और दूसरी अधूरी है। एक बेहतरीन है और दूसरी बेहतरीन नहीं है। अलग-अलग आसमानी किताबों में इस तरह का अंतर पैदा करना ख़ुद पैग़ंबरों* के बीच अंतर पैदा करना है और ईश्वर के पैग़ंबरों के बीच अंतर पैदा करना निश्चित रूप से सही नहीं है। फिर दोनों किताबों में क्या अंतर है? वह अंतर केवल एक है और वह यह कि क़ुरआन सुरक्षित है, जबकि दूसरी किताबें अपनी असली और शुरुआती हालत में सुरक्षित नहीं। यही सुरक्षात्मकता क़ुरआन की असली और बड़ी ख़ासियत है। इसी ख़ासियत की बुनियाद पर अब वह क़यामत** तक के लिए एकमात्र फॉलो (follow) करने लायक़ किताब है और एकमात्र मुक्ति का माध्यम।

फिर भी क़ुरआन का सुरक्षित होना और सुरक्षित रहना कोई साधारण घटना नहीं। यह इस आसमान के नीचे घटने वाली सभी घटनाओं में सबसे ज़्यादा

---

* ईशदूत; ईश्वर द्वारा नियुक्त व्यक्ति, जिसने ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाया।

** सृष्टि के विनाश और अंत का दिन।

अनोखी है। इसकी असाधारण महत्ता उस समय समझ में आती है, जबकि इस पर विचार किया जाए कि दूसरी किताबें क्यों सुरक्षित नहीं रहीं और क़ुरआन क्यों पूरी तरह से सुरक्षित हालत में अब भी बचा हुआ है।

ईश्वर को हालाँकि पूरी कायनात पर पूरा अधिकार प्राप्त है, लेकिन निर्धारित समय के लिए उसने इंसानों को इम्तिहान के आधार पर आज़ादी दे दी है। इसी आज़ादी से फ़ायदा उठाकर हर बार इंसान यह करता रहा कि वह आसमानी किताबों को बदलता या ख़त्म करता रहा। आख़िरकार ईश्वर ने इंसानों के ऊपर अपनी विशेष कृपा की। अपने मार्गदर्शन को लगातार सही हालत में बचाए रखने के लिए उसने काफ़ी सुरक्षात्मक प्रबंध किए। ईश्वर की ख़ास मदद से पैग़ंबर-ए-इस्लाम और उनके साथी एक नए इतिहास को अस्तित्व में लाए। उन्होंने सभी उपद्रवियों (hooligan) को हराया। उन्होंने पुरानी दुनिया को बदलकर एक ऐसी नई दुनिया बनाई, जो अपने न हारने योग्य अनुकूल पहलुओं के साथ क़ुरआन की स्थायी सुरक्षा की ज़िम्मेदार बन जाए। इसका नतीजा यह हुआ कि क़ुरआन बाहरी और अंदरूनी, दोनों दृष्टि से हमेशा के लिए सुरक्षित और प्रभुत्वशाली ग्रंथ (master book) बन गया।

वहीदुद्दीन ख़ान

क़ुरआन के प्रमाण

"यह ईश्वर की किताब है, इसमें कोई शक नहीं। यह मार्गदर्शन है
डरने वालों के लिए।" (क़ुरआन, 2:2)

क़ुरआन : ईश्वर की किताब

पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने जब यह दावा किया कि क़ुरआन एक आसमानी किताब है, जो ईश्वर की तरफ़ से इंसानों के मार्गदर्शन के लिए भेजी गई है तो बहुत से लोगों ने उसको नहीं माना। उन्होंने कहा कि यह एक इंसानी रचना है, न कि ईश्वरीय रचना। इसके जवाब में क़ुरआन में कहा गया कि अगर तुम अपनी बात में सच्चे हो तो क़ुरआन की तरह एक किताब बनाकर लाओ। (52:34)

इसी के साथ क़ुरआन ने निश्चित शब्दों में यह ऐलान कर दिया कि अगर सभी इंसान और जिन्न इस बात पर इकट्ठे हो जाएँ कि वे क़ुरआन जैसी किताब ले आएँ तो वे बिल्कुल न ला सकेंगे, चाहे वे सब एक-दूसरे के मददगार हो जाएँ। (17:88)

क़ुरआन एक अनादि किताब (eternal book) है, इस दृष्टि से यह एक अनादि चैलेंज (eternal challenge) है। क़यामत तक के सारे इंसान इसके संबोधित हैं।

अब सवाल यह है कि क़ुरआन की वह कौन सी विशेषता है, जो इंसान के लिए अनुकरणीय (imitable) नहीं है। इसके अनेक पहलू हैं। यहाँ हम इसके केवल एक पहलू की चर्चा करेंगे, जिसका वर्णन क़ुरआन में इन शब्दों में किया गया है—

> "क्या लोग क़ुरआन पर विचार नहीं करते और अगर वह ईश्वर के सिवा किसी और की तरफ़ से होता तो वे इसके अंदर बड़ा इख़्तिलाफ़ (contradiction) पाते।" (4:82)

इस आयत* में 'इख़्तिलाफ़' की व्याख्या अंतर, टकराव, परस्पर विरोध, प्रतिकूलता आदि शब्दों से की गई है। आर्थर आर्बरी ने इख़्तिलाफ़ का अनुवाद असंगति (inconsistency) किया है।

कथन में परस्पर विरोध न होना एक बहुत ही अनोखा गुण है, जो केवल ईश्वर के यहाँ पाया जा सकता है। किसी इंसान के लिए ऐसे कथन की रचना संभव नहीं। परस्पर विरोध से पवित्र कथन अस्तित्व में लाने के लिए ज़रूरी है कि कथन की रचना करने वाले का ज्ञान अतीत से भविष्य के मामले का घेराव किए हुए हो। वह कायनात का पूरा ज्ञान रखता हो। वह चीज़ों की मूल प्रकृति से बिना संदेह पूरी तरह परिचित हो। उसका ज्ञान सीधे रूप से जानकारी पर आधारित हो, न कि किसी बिचौलिए की जानकारी पर। इसी के साथ उसके अंदर यह अनोखी विशेषता हो कि वह चीज़ों को अप्रभावित होकर ठीक वैसा ही देख सकता हो, जैसा कि वह वास्तव में है।

यह सारे असाधारण गुण केवल ईश्वर में हो सकते हैं। कोई इंसान कभी भी इन गुणों का वाहक नहीं हो सकता। यही कारण है कि ईश्वर का कथन हमेशा इख़्तिलाफ़ या परस्पर विरोध से पवित्र होता है। इंसान कभी इन गुणों का वाहक नहीं होता, इसलिए इंसान का कथन कभी इख़्तिलाफ़ और परस्पर विरोध से पवित्र नहीं होता।

ईश्वरीय गुण

कथन में टकराव का मामला कोई संयोग का मामला नहीं है, यह इंसानी सोच का अनिवार्य गुण है। यह दुनिया इस प्रकार बनी है कि वह केवल ईश्वरीय सोच को स्वीकार करती है। इस दुनिया में यह असंभव है कि ईश्वर के दृष्टिकोण को छोड़कर कोई दूसरा उसकी बराबरी का दृष्टिकोण बनाया जा सके। ईश्वर के सिवा दूसरे आधार पर जो भी सिद्धांत बनाया जाएगा, वह तुरंत टकराव का शिकार हो जाएगा। वह कायनात के सामूहिक ढाँचे के अनुरूप (compatible) नहीं हो सकता।

इस दुनिया में किसी भी मानवीय दृष्टिकोण के लिए संभव नहीं कि वह वैचारिक मतभेद से ख़ाली हो सके। इस बात को हम यहाँ उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करेंगे।

---

* क़ुरआन की सबसे छोटी इकाई, श्लोक, इसका शाब्दिक अनुवाद निशानी या संकेत है।

डार्विन का क्रमिक विकास का सिद्धांत

इसका एक उदाहरण जैविक क्रमिक विकास का सिद्धांत (Theory of evolution) है। चार्ल्स डार्विन (1809-1882) और दूसरे वैज्ञानिकों ने देखा कि ज़मीन पर जो विभिन्न प्रकार के जीव मौजूद हैं, उनमें प्रत्यक्षत: विभिन्नताओं के बावजूद जैविक व्यवस्था (biology) की दृष्टि से काफ़ी समानता पाई जाती है, जैसे— घोड़े का ढाँचा अगर खड़ा किया जाए तो वह इंसान के ढाँचे से मिलता-जुलता नज़र आएगा।

इस प्रकार के विभिन्न अवलोकनों (observations) से उन्होंने यह दृष्टिकोण बना लिया कि इंसान कोई अलग जाति नहीं। इंसान और जानवर, दोनों एक ही सम्मिलित वंश से संबंध रखते हैं। रेंगने वाले जानवर, चौपाए और बंदर सब जैविकी की विकास-यात्रा की पिछली कड़ियाँ हैं और इंसान इस विकास-यात्रा की अगली कड़ी है।

यह नज़रिया एक सौ साल तक इंसान के दिलो-दिमाग़ पर छाया रहा, मगर बाद में होने वाले अध्ययन ने बताया कि वह कायनात की सामूहिक व्यवस्था से टकरा रहा है। वह इसके अंदर सही नहीं बैठता।

उदाहरण के तौर पर— वैज्ञानिक तरीक़ों के इस्तेमाल से अब यह पता चल गया है कि धरती की आयु क्या है। इसलिए अंदाज़ा लगाया गया है कि लगभग 4.5 बिलियन साल पहले धरती अस्तित्व में आई। यह अवधि (duration) डार्विन के काल्पनिक विकास को अस्तित्व में लाने के लिए आख़िरी हद तक नाकाफ़ी है। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाकर अनुमान लगाया है कि केवल एक प्रोटीनी अणु के मिश्रण को विकासीय रूप में अस्तित्व में लाने के लिए करोड़ों-अरबों वर्ष से अधिक लंबी अवधि की ज़रूरत है। फिर केवल 4.5 बिलियन साल में धरती की सतह पर संपूर्ण शरीर रखने वाले जानवरों की दस लाख से अधिक जातियाँ कैसे बन गईं और पेड़-पौधों की दो लाख से अधिक विकसित श्रेणियाँ क्योंकर अस्तित्व में आ गईं। इतने कम समय में तो एक साधारण जानवर भी नहीं बन सकता। कहाँ कि काल्पनिक विकास के अनुसार असंख्य पड़ावों से गुज़रकर इंसान जैसी उच्च जाति अस्तित्व में आ जाए।

डार्विन का क्रमिक विकास का सिद्धांत जैविकी प्रक्रिया में जिन जैविक परिवर्तनों (biological changes) को स्वीकार करता है, उनके बारे में गणितशास्त्र (mathematics) के एक विद्वान पाचो (Patau) ने हिसाब लगाया

है। उसके अनुसार एक छोटे-से जैविक परिवर्तन को पूरा होने के लिए दस लाख नस्लों के समय की ज़रूरत है। इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि अगर परिकल्पित विकासीय क्रिया के द्वारा कुत्ते जैसी नस्ल में अनगिनत परिवर्तनों के जमा होने से घोड़े जैसा बिल्कुल अलग जानवर बने तो इसके बनने में कितने लंबे समय की ज़रूरत होगी।

इस मुश्किल को हल करने के लिए वह सिद्धांत बनाया गया, जिसे पैनस्परमिया (Panspermia) का सिद्धांत कहा जाता है, जिसका मतलब यह था कि ज़िंदगी शुरुआत में पृथ्वी के बाहर अंतरिक्ष में किसी जगह पर पैदा हुई और वहाँ से सफ़र करके पृथ्वी पर आई, लेकिन रिसर्च ने बताया कि इसे मानने में और भी ज़्यादा बड़ी-बड़ी मुश्किलें रुकावट बनी हुई हैं। पृथ्वी के अलावा बहुत बड़ी कायनात के किसी भी सितारे या ग्रह पर वह साधन मौजूद नहीं हैं, जहाँ ज़िंदगी जैसी चीज़ तरक़्क़ी कर सके, जैसे— पानी, जो ज़िंदगी के मौजूद होने और बाक़ी रहने के लिए अनिवार्य रूप से ज़रूरी है, वह अब तक की जानकारी के अनुसार पृथ्वी के अलावा कहीं और मौजूद नहीं।

फिर कुछ बुद्धिमान लोगों ने आपातिक विकास (emergent evolution) का दृष्टिकोण बनाया। इसके अनुसार माना गया कि ज़िंदगी या उसकी जातियाँ बिल्कुल अचानक पैदा हो जाती हैं, लेकिन स्पष्ट है कि यह केवल एक शब्द है, न कि कोई ज्ञानात्मक सिद्धांत। अचानक पैदाइश कभी अंधे तात्विक नियम के ज़रिये संभव नहीं। अचानक पैदाइश का सिद्धांत अनिवार्य रूप से एक हस्तक्षेप करने वाले की माँग करता है यानी उस बाहरी कर्ता की, जिसको न मानने के लिए यह सारे सिद्धांत गढ़े गए हैं।

हक़ीक़त यह है कि कायनात की स्पष्टता (कारण) एक रचयिता को माने बिना संभव ही नहीं। रचयिता को छोड़कर दूसरी जो भी बुनियाद तलाश की जाएगी, वह कायनात के नक़्शे से टकरा जाएगी, वह इसके ढाँचे में जगह नहीं पा सकती।

इंसान की अज्ञानता

लंदन से एक किताब छपी है, जिसका नाम है 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ इग्नोरेंस'(Encyclopedia of Ignorance) यानी अज्ञानता का शब्दकोश। इस शब्दकोश के क्रम में विभिन्न विभागों के प्रमुख विद्वानों ने हिस्सा लिया है।

इसके परिचय-पत्र में बताया गया है कि अज्ञानता के शब्दकोश में साठ बहुत ही मशहूर वैज्ञानिकों ने विभिन्न अनुसंधानात्मक विभागों का जायज़ा लेकर दिखाया है कि दुनिया के बारे में हमारे ज्ञान में कौन-सा महत्वपूर्ण ख़ालीपन पाया जाता है।

In the *Encyclopedia of ignorance* some 60 well known scientists survey different fields of research, trying to point out significant gaps in our knowledge of the world.

यह किताब हक़ीक़त में इस घटना की ज्ञानात्मक स्वीकृती है कि दुनिया को बनाने वाले ने इसे इस तरह बनाया है कि यह किसी भी यांत्रिक व्याख्या (mechanical interpretation) को स्वीकार नहीं करती। उदाहरण के लिए— प्रोफ़ेसर जॉन मीनार्ड स्मिथ ने अपने लेख में लिखा है कि क्रमिक विकास का सिद्धांत हल न होने वाली भीतरी समस्याओं (built in problems) से दो-चार है, क्योंकि हमारे पास दृष्टिकोण हैं, मगर हमारे पास वह माध्यम नहीं कि हम वास्तविक घटनाओं से अपने दृष्टिकोण की पुष्टि कर सकें।

क़ुरआन के अनुसार इंसान और दूसरी सारी जातियाँ ईश्वर की उत्पत्ति हैं। इसके विपरीत क्रमिक विकास का सिद्धांत ज़िंदगी की सभी क़िस्मों को अंधी भौतिक क्रिया का नतीजा बताता है। क़ुरआन का जवाब बेहद स्पष्ट है, क्योंकि ईश्वर एक इरादा करने वाली हस्ती है, वह साधनों का मोहताज नहीं। वह अपनी मर्ज़ी के तहत किसी भी घटना को सामने ला सकता है। इसके विपरीत विकासीय क्रिया (developmental action) के लिए ज़रूरी है कि हर घटना के पीछे इसका कोई कारण पाया जाए। चूँकि ऐसे कारणों की खोज संभव नहीं, इसलिए डार्विन का क्रमिक विकास का सिद्धांत इस दुनिया में स्पष्टताविहीन होकर रह जाता है। डार्विन का क्रमिक विकास का सिद्धांत अनिवार्य तार्किक रिक्तता से दो-चार है, जबकि क़ुरआन के सिद्धांत में कोई तार्किक रिक्तता नहीं पाई जाती।

राजनीतिक ज्ञान

यही मामला राजनीतिक दर्शनशास्त्र (political philosophy) का है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) के निबंध-लेखक के शब्दों में—

“राजनीतिक दर्शनशास्त्र और राजनीतिक मतभेद बुनियादी रूप से

एक ही सवाल के इर्द-गिर्द घूमते हैं, यह कि किसको किसके ऊपर अधिकार प्राप्त हो।"

Political philosophy and political conflict have revolved basically around who should have power over whom. (14/697)

इस वैचारिक मैदान में पिछले पाँच हज़ार वर्ष से उच्चतर इंसानी दिमाग़ अपनी कोशिशें कर रहे हैं। इसके बावजूद राजनीतिक शास्त्र को संबद्ध व्यवस्था बनाने के लिए वह चीज़ हासिल न हो सकी, जिसे स्पिनोज़ा (spinoza) ने ज्ञानात्मक आधार (scientific base) कहा है।

राजनीतिक शास्त्र में एक दर्जन से ज़्यादा विचारधाराएँ पाई जाती हैं, फिर भी विस्तृत विभाजन में वह केवल दो हैं। एक वह, जो व्यक्तिगत सत्ता की वक़ालत करती हैं और दूसरी वह, जो लोकतांत्रिक सत्ता की समर्थक हैं। इन दोनों पर ही कड़े ऐतराज़ किए जाते हैं। व्यक्तिगत सत्ता के सिद्धांत पर यह ऐतराज़ किया जाता है कि एक इंसान को दूसरे इंसान पर क्यों शासकीय सत्ता हासिल हो। इसलिए वह कभी सामान्य लोकप्रियता हासिल न कर सकी। दूसरा दृष्टिकोण वह है, जिसे लोकतांत्रिक सत्ता का सिद्धांत कहा जाता है। हालाँकि व्यावहारिक रूप में यह एक लोकप्रिय दृष्टिकोण है, मगर सैद्धांतिक और वैचारिक दृष्टि से इस पर कड़ा संदेह व्यक्त किया गया है।

लोकतंत्र (democracy) का सिद्धांत इस विश्वास पर क़ायम है कि सभी इंसान आज़ाद हैं और समान अधिकार रखते हैं। रूसो की किताब 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (Social Contract) का पहला वाक्य यह है—

"इंसान आज़ाद पैदा हुआ है, मगर मैं इसे ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ देख रहा हूँ।"

डेमोक्रेसी एक यूनानी शब्द है। इसका मतलब है जनता के द्वारा शासन (rule by the people), लेकिन व्यावहारिक रूप से यह असंभव है कि सारी जनता की हुकूमत क़ायम हो सके। सभी लोगों पर सभी लोग आख़िर किस तरह हुकूमत करेंगे और एक बड़ी बात यह कि

इंसान के बारे में कहा जाता है कि वह एक सामाजिक पशु (social animal) है। इंसान इस दुनिया में अकेला नहीं है कि वह जिस तरह चाहे रहे, बल्कि वह सामाजिक समूह के साथ जुड़ा हुआ है। एक विचारक के शब्दों में,

"इंसान आज़ाद पैदा नहीं हुआ है। इंसान एक समाज के अंदर पैदा होता है, जो कि इसके ऊपर कुछ प्रतिबंध लागू करता है।"

"Man is not born free. Man is born into society which imposes restraints on him."

जब सारी जनता एक ही समय हुकूमत नहीं कर सकती तो जनता की हुकूमत की व्यवस्था किस प्रकार की जाए। इस सिलसिले में अलग-अलग दृष्टिकोण पेश किए गए। सबसे अधिक लोकप्रिय दृष्टिकोण रूसो का दृष्टिकोण है, जिसे उसने जनमत (general will) की बुनियाद पर क़ायम किया है। यह जनमत सत्तारूढ़ लोगों के चुनाव में प्रकट होता है। इस तरह जनता का शासन व्यावहारिक रूप से निर्वाचित लोगों का शासन बन जाता है। जनता को चुनाव में वोट देने की आज़ादी होती है, मगर वोट देने के बाद वह दोबारा अपने जैसे कुछ लोगों के अधीन हो जाते हैं। रूसो ने इसका जवाब यह दिया कि एक आदमी की इच्छा की पैरवी ग़ुलामी है, मगर ख़ुद अपने निर्धारित किए हुए क़ानून की पैरवी करना आज़ादी है—

"To follow one's impulse is slavery but to obey the self prescribed law is liberty. (15/1172)"

ज़ाहिर है कि यह जवाब काफ़ी नहीं था। इसलिए इस दृष्टिकोण को दोबारा कड़े ऐतराज़ों का सामना करना पड़ा, क्योंकि लोग देख रहे थे कि ख़ूबसूरत शब्दों के बावजूद निर्वाचित लोकतंत्र व्यवहारिक रूप से निर्वाचित राजशाही (elective monarchy) का दूसरा नाम है। चुनाव के बाद लोकतांत्रिक लोग वही कुछ बन जाते हैं, जो इससे पहले शाही लोग बने हुए थे।

इस तरह सारे राजनीतिक विचारक वैचारिक टकराव (ideological confrontation) का शिकार हैं, जिससे निकलने का कोई रास्ता उन्हें नज़र नहीं आता। आस्था के रूप में सब-के-सब मानवीय समानता को उच्चतम मूल्य मानते हैं, मगर मानवीय समानता वास्तविक अर्थों में न तो राजशाही व्यवस्था में हासिल होती और न ही लोकतांत्रिक व्यवस्था में। राजशाही व्यवस्था अगर ख़ानदानी बादशाहत है तो लोकतांत्रिक व्यवस्था चुनावी बादशाहत। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में राजशाही व्यवस्था के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त विद्रोह हुआ, मगर जब राजशाही लोगों की अधीनता समाप्त हो गई तो लोगों को मालूम हुआ कि उनके लिए दूसरा रास्ता केवल यह है कि चुने हुए लोगों की अधीनता पर अपने आपको सहमत कर लें। दोनों

व्यवस्थाओं में जो अंतर था, वह केवल यह कि नए शासक अपने आपको ज़मीन पर जनता का प्रतिनिधि (public representative) कहते थे। जबकि पुराने शासकों का कहना था कि वे धरती पर ईश्वर के प्रतिनिधि (representatives of God) हैं।

ब्रिटानिका के निबंध-लेखक ने इस मामले में इंसान की नाकामी का ख़ुलासा इन शब्दों में किया है—

> "The history of Political philosophy from Plato until the present day makes plain that modern political philosophy is still faced with basic problems." (14/695)
>
> "राजनीतिक दर्शनशास्त्र का इतिहास, अफ़लातून से लेकर अब तक यह स्पष्ट करता है कि आधुनिक राजनीतिक दर्शनशास्त्र अभी तक बुनियादी समस्याओं से दो-चार है।"

राजशाही या लोकतंत्र में उच्च सत्ता का अधिकार इंसानों में से कुछ इंसानों को देना पड़ता है। इस प्रकार दोनों व्यवस्था मानवीय समानता को रद्द कर देती हैं। लोकतंत्र मानवीय समानता के नाम पर ही पेश किया गया, मगर वह अपने आंतरिक टकराव के कारण विपरीत परिणाम का वाहक साबित हुआ।

हक़ीक़त यह है कि एक ही राजनीतिक दर्शनशास्त्र है, जो इस दुनिया में वैचारिक टकराव से ख़ाली है और वह क़ुरआन का दर्शनशास्त्र है। क़ुरआन ईश्वरीय सत्ता का दृष्टिकोण पेश करता है—

> "वह कहते हैं कि क्या हुक्म में हमारा भी कुछ हिस्सा है। कहो कि हुक्म सब ईश्वर ही का है।" (3:154)

यह दृष्टिकोण वैचारिक टकराव से पूरी तरह ख़ाली है। जब ईश्वर शासक और सारे लोग पराधीन हों तो सारे इंसान बराबर हो जाते हैं। एक इंसान और दूसरे इंसान का सारा अंतर मिट जाता है। अब अंतर केवल रचयिता और रचना के बीच रहता है, न कि रचना (मानव) और रचना के बीच।

ईश्वर की सत्ता में सारे इंसान बराबर का दर्जा पा लेते हैं, क्योंकि सत्ता इंसानों से बाहर एक ऊँची हस्ती को सौंप दी जाती है। इसके विपरीत राजशाही या लोकतंत्र में समानता की क़ीमत बाक़ी नहीं रहती, क्योंकि इनमें से एक इंसान के मुक़ाबले में दूसरे इंसान को सत्ताधारी मानना पड़ता है।

ईश्वर की सत्ता का दृष्टिकोण एक क्रमबद्ध वैचारिक व्यवस्था बनाता है, जो हर तरह के टकराव से ख़ाली है। जबकि मानवीय सत्ता का कोई सिद्धांत भी ऐसा नहीं बनाया जा सकता, जो टकराव और आपसी विरोध से शुद्ध हो।

सारे राजनीतिक सिद्धांतों की यह कोशिश रही है कि वह इंसानों के बीच शासक और पराधीन का विभाजन समाप्त करे, लेकिन मानवीय व्यवस्था में यह विभाजन कभी समाप्त नहीं हो सकता, चाहे जो भी राजनीतिक व्यवस्था बनाई जाए। यह स्थिति हमेशा बाक़ी रहेगी कि कुछ लोग एक या दूसरे नाम पर शासक बन जाएँगे और बाक़ी लोग पराधीन की हैसियत धारण कर लेंगे, मगर जब ईश्वर को शासक मान लिया जाए तो यह विभाजन अपने आप समाप्त हो जाता है। अब एक ओर ईश्वर होता है और दूसरी ओर इंसान। शासक और प्रजा का विभाजन सिर्फ़ ईश्वर और इंसान के बीच रहता है। बाक़ी जहाँ तक इंसान और इंसान के बीच का मामला है, सब इंसान समान रूप से एक समान हैसियत के मालिक हो जाते हैं।

हक़ीक़त यह है कि इंसानों के बीच शासक और पराधीन का विभाजन समाप्त करने की कोई स्थिति इसके अलावा नहीं कि ईश्वर को वास्तविक बादशाह मानकर सब इंसान अपने आपको उसकी अधीनता में दे दें। यही एकमात्र राजनीतिक दृष्टिकोण है, जो वैचारिक टकराव से शुद्ध है। दूसरा कोई भी दृष्टिकोण वैचारिक टकराव से ख़ाली नहीं हो सकता।

टकराव के दो प्रकार

क़ुरआन की आयत (4:82) में जिस टकराव (conflict) या असमानता का वर्णन किया गया है, उसके दो ख़ास पहलू हैं— एक आंतरिक और दूसरा बाहरी।

आंतरिक असमानता (internal contradiction) यह है कि किताब का एक बयान किताब के दूसरे बयान से टकरा रहा हो। बाहरी असमानता (external contradiction) यह है कि किताब का बयान बाहरी दुनिया की हक़ीक़तों से टकरा जाए। क़ुरआन का दावा है कि वह इन दोनों प्रकार के टकरावों से ख़ाली है, जबकि कोई भी मानवीय रचना इनसे ख़ाली नहीं हो सकती। यही घटना इस बात का सबूत है कि क़ुरआन ग़ैर-इंसानी ज़हन से निकला हुआ कलाम है। अगर

वह एक इंसानी कलाम होता तो ज़रूर उसके अंदर भी वही कमी पाई जाती, जो सारे इंसानी कलाम में यक़ीनी तौर पर पाई जाती है।

कलाम में आंतरिक टकराव हक़ीक़त में वक्ता के व्यक्तित्व में अंदरूनी कमी का नतीजा होता है। आंतरिक टकराव से बचने के लिए दो चीज़ें अनिवार्य हैं— एक पूर्ण ज्ञान और दूसरी पूर्ण वस्तुनिष्ठता (objectivity)। कोई भी इंसान इन दोनों कमियों से ख़ाली नहीं होता, इसलिए इंसान का कलाम आंतरिक टकराव से ख़ाली भी नहीं होता। यह केवल ईश्वर है, जो सारी कमियों से पवित्र है। इसिलए केवल ईश्वर का कलाम ही वह कलाम है, जो आंतरिक टकराव से पूरी तरह ख़ाली है।

इंसान अपनी सीमितताओं (limitations) के कारण बहुत-सी बातों को अपनी बुद्धि की पकड़ में नहीं ला सकता, इसलिए अनुमानित रूप से कभी वह एक बात कहता है और कभी दूसरी बात। हर इंसान का यह हाल है कि वह कच्ची आयु (immature age) से पक्की आयु (mature age) की ओर सफ़र करता है। इसका नतीजा यह होता है कि वह कच्ची आयु में जो बात कहता है, पक्की आयु में पहुँचकर वह ख़ुद उसके ख़िलाफ़ बोलने लगता है। हर आदमी का ज्ञान और अनुभव बढ़ता रहता है। इस बुनियाद पर उसकी शुरुआती बात कुछ और होती है और आख़िरी बात कुछ और। इंसान की आयु बहुत कम है। उसकी जानकारी अभी पूरी नहीं होती कि उसकी मौत हो जाती है। वह अपनी अधूरी जानकारी की बुनियाद पर ऐसी बात कहता है, जो उसके बाद ठीक साबित नहीं होती।

इसी तरह आदमी की किसी से दोस्ती होती है और किसी से दुश्मनी। वह किसी से मुहब्बत करता है और किसी से नफ़रत। वह किसी के बारे में साधारण ज़हन के तहत सोचता है और किसी के बारे में प्रतिक्रिया (reaction) की मानसिकता का शिकार हो जाता है। इंसान पर कभी ग़म का पल गुज़रता है और कभी ख़ुशी का। वह कभी एक तरंग में होता है और कभी दूसरी तरंग में। इस आधार पर इंसान की बात में समानता नहीं होती। वह कभी एक तरह की बात कहता है और कभी दूसरी तरह की बात बोलने लगता है। ईश्वर इन सारी कमियों से पाक है, इसलिए उसकी बात हमेशा समान होती है और हर तरह के विरोध से ख़ाली भी।

हज़रत मसीह का व्यक्तित्व

उदाहरण के लिए बाइबल को लीजिए। बाइबल अपनी शुरुआती हालत में ईश्वर का कथन थी, मगर बाद में उसमें इंसानी मिलावट हुई। इसका नतीजा यह हुआ कि उसमें अधिकता से आंतरिक टकराव पैदा हो गए। बाइबल का वह भाग, जिसे इंजील या न्यू टेस्टामेंट कहा जाता है, उसमें ईसा की वंशावली दी गई है। यह वंशावली मत्ती की इंजील में इस तरह शुरू होती है— यसु मसीह सपुत्र-दाऊद सपुत्र-अब्राहम की वंशावली।

यह संक्षिप्त वंशावली है। इसके बाद इंजील में विस्तृत वंशावली है, जो इब्राहीम से शुरू होती है और आख़िर में 'यूसुफ़' पर समाप्त होती है, जो इसके बयान के अनुसार मरयम के पति थे, जिनसे मसीह पैदा हुए। इसके बाद पाठक 'मरक़स' की इंजील तक पहुँचता है तो वहाँ किताब के शुरू में मसीह की वंशावली इन शब्दों में मिलती है— ईश्वर का पुत्र यसु मसीह।

मानो इंजील के एक अध्याय के अनुसार मसीह यूसुफ़ नामक एक आदमी के पुत्र थे और इसी इंजील के दूसरे अध्याय के अनुसार मसीह ईश्वर के पुत्र थे।

इंजील अपनी शुरुआती हालत में नि:संदेह ईश्वरीय कथन थी और टकरावों से ख़ाली थी, मगर बाद में उसमें इंसानी कथन शामिल हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि इसके वर्णन में टकराव पैदा हो गया।

इंजील के इस टकराव का स्पष्टीकरण चर्च ने एक और अजीबो-ग़रीब टकराव से किया है। अत: एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) के अनुसार, वे कथित यूसुफ़ के लिए निम्नलिखित शब्द प्रयोग करते हैं—

Christ's earthly father, the virgin Mary's husband.

यानी मसीह के सांसारिक पिता, कुँवारी मरयम के पति।

कार्ल मार्क्स का वैचारिक टकराव

यह धार्मिक कथन में आंतरिक टकराव का उदाहरण था। अब अधार्मिक कथन में आंतरिक टकराव का उदाहरण लीजिए। यहाँ मैं कार्ल मार्क्स का हवाला देना चाहूँगा। मौजूदा ज़माने में मार्क्स की बौद्धिक महानता का हाल यह है कि अमेरिकी प्रोफ़ेसर जॉन गालब्रेथ ने मार्क्स की चर्चा करते हुए लिखा है—

"If we agree that the Bible is a work of collective authorship, only Muhammad rivals Marx in the number

of professed followers recruited by a single author. And the competition is not really very close. The followers of Marx now far outnumber the sons of the prophet."

John Kenneth Galbraith, *The Age of Uncertainty*

British Broadcasting Corporation, 35 Marylebone high street, London p.77

"अगर हम यह मान लें कि बाइबल कई लोगों की संयुक्त रचना है तो केवल मुहम्मद वह दूसरे अकेले इंसान हैं, जो श्रद्धालुओं और अनुयायियों की दृष्टि से मार्क्स की बराबरी कर सकते हैं, फिर मुक़ाबला ज़्यादा क़रीब का नहीं। मार्क्स के मानने वालों की संख्या आज पैग़ंबर के मानने वालों की संख्या से बहुत ज़्यादा बढ़ चुकी है।"

मगर सारी लोकप्रियता के बावजूद यह एक हक़ीक़त है कि मार्क्स का कथन आंतरिक टकराव का एक बड़ा कारनामा है। मार्क्स के विचार में इतने ज़्यादा टकराव पाए जाते हैं कि उसके विचारों को टकरावों का समूह कहना ज़्यादा सही होगा। उदाहरण के लिए— मार्क्स ने दुनिया की सारी ख़राबियों का कारण समाज में वर्गों का होना बताया है। ये वर्ग उसके नज़दीक, चीज़ों का व्यक्तिगत मालिक (personal ownership) होने की व्यवस्था के कारण पैदा होते हैं। एक वर्ग पूँजीपति उत्पादन के माध्यमों पर क़ब्ज़ा करके दूसरे श्रमिक वर्ग को लूटता है।

इसका हल मार्क्स ने यह बताया कि पूँजीपति वर्ग से उसकी संपत्ति छीन ली जाए और उसे मज़दूर वर्ग के प्रबंधन में दे दिया जाए। इस कार्यवाही को वह वर्गविहीन समाज (classless society) स्थापित करने का नाम देता है, मगर यह खुला हुआ वैचारिक टकराव है, क्योंकि कथित कार्यवाही से जो चीज़ सामने आएगी, वह वर्गविहीन समाज नहीं, बल्कि यह है कि आर्थिक माध्यमों पर एक वर्ग का क़ब्ज़ा समाप्त होकर दूसरे वर्ग का क़ब्ज़ा शुरू हो जाए। यह वर्गों की समाप्ति नहीं, बल्कि केवल वर्गों का परिवर्तन है। इस अंतर के साथ पहले यह क़ब्ज़ा संपत्ति के नाम पर था और अब यह क़ब्ज़ा प्रबंध के नाम पर होगा। वह चीज़, जिसे मार्क्स वर्गविहीन समाज कहता है, व्यावहारिक रूप से पूँजीपति वर्ग के मालिकाना हक़ को समाप्त करके कम्युनिस्ट वर्ग को मालिक बनाने के सिवा और कुछ नहीं है।

मार्क्स एक ही चीज़ को एक जगह बुराई कहता है और दूसरी जगह भलाई, मगर पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ कठोर घृणा और पक्षपात के कारण उसे अपना यह

वैचारिक टकराव दिखाई नहीं दिया। वह आर्थिक माध्यमों को पूँजीपतियों के बजाय पदाधिकारियों के क़ब्ज़े में दे रहा था, मगर अपने पक्षपाती अंधेपन के कारण वह अपने इस टकराव को महसूस न कर सका। एक ही स्थिति की दो घटनाओं में से एक घटना को उसने व्यक्तिगत लूट कहा और दूसरी को सामूहिक व्यवस्था।

क़ुरआन इस तरह के आंतरिक टकराव से पूरी तरह ख़ाली है। इसका कोई बयान उसके दूसरे बयान से नहीं टकराता। क़ुरआन के सारे बयानों में पूरी तरह की आंतरिक समानता पाई जाती है।

बेतुके उदाहरण

क़ुरआन के आलोचकों (critics) ने इस सिलसिले में कुछ उदाहरण देकर क़ुरआन के अंदर आंतरिक टकराव साबित करने की कोशिश की है, मगर यह सब-के-सब बेतुके उदाहरण हैं। गहराई से छानबीन तुरंत इसकी ग़लती स्पष्ट कर देती है। उदाहरण के लिए— वे कहते हैं कि क़ुरआन ने एक ओर यह उच्च नियम प्रस्तुत किया कि सभी इंसान बराबर हैं। क़ुरआन में कहा गया है—

> "ऐ लोगो ! अपने रब से डरो, जिसने तुम्हें एक जानदार से पैदा किया और इस जानदार से उसका जोड़ा पैदा किया और उनसे बहुत से मर्द और औरतें फैला दीं।" (4:1)

वे यह भी कहते हैं कि हज के मौक़े पर आख़िरी बार संबोधित करते हुए हज़रत मुहम्मद ने मुसलमानों से कहा कि सभी लोग आदम से हैं और आदम मिट्टी से थे। इस नियम के अनुसार औरत का भी वही दर्जा होना चाहिए, जो मर्द का दर्जा है, मगर व्यावहारिक रूप से ऐसा नहीं है । एक ओर क़ुरआन इंसानी बराबरी का झंडा उठाए हुए है और दूसरी ओर उसने औरत को समाज में कमतर दर्जा दे दिया। इसलिए गवाही के मामले में यह क़ानून निर्धारित किया कि दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर मानी जाएगी।

यह सरासर ग़लतफ़हमी है। यह सही है कि इस्लाम में आम हालात में दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर मानी गई है, मगर इसका आधार मर्द और औरतों में भेदभाव (gender discrimination) पर नहीं है, बल्कि इसका कारण बिल्कुल दूसरा है। यह हुक्म क़ुरआन की जिस आयत में है, वहीं इसका कारण भी बता दिया गया है। वह आयत यह है—

> "जब तुम उधार का मामला करो तो उसे लिख लिया करो और अपने

मर्दों में से दो मर्दों को गवाह बना लो और अगर दो मर्द गवाह न मिलें तो एक मर्द और दो औरतें, ऐसे गवाहों में से जिनको तुम पसंद करते हो, ताकि उन दोनों औरतों में से कोई अगर भूल जाए तो दूसरी औरत उसे याद दिला दे।" (2:282)

आयत के ये शब्द स्पष्ट रूप से बताते हैं कि इस हुक्म की बुनियाद औरत और मर्द में भेदभाव पर नहीं, बल्कि केवल याददाश्त पर है। यह आयत ज़िंदगी की उस हक़ीक़त की ओर इशारा कर रही है कि औरतों की याददाश्त आम तौर पर मर्दों से कम होती है। इसलिए क़र्ज़ के मामले में औरत को गवाही में लेना हो तो एक मर्द की जगह दो औरतें गवाह के तौर पर ली जाएँ, ताकि आगे जब कभी गवाही देनी हो तो दोनों मिलकर एक-दूसरे की याददाश्त की कमी की पूर्ति कर सकें।

यहाँ मैं याद दिलाना चाहता हूँ कि आधुनिक अनुसंधानों (modern research) ने इस बात की पुष्टि कर दी है कि मर्द के मुक़ाबले में औरत की याददाश्त कम होती है। रूस में इस विषय पर नियमित रूप से वैज्ञानिक रिसर्च किया गया है और नतीजे किताब के रूप में प्रकाशित किए गए हैं। इस रिसर्च का ख़ुलासा अख़बारों में आ चुका है। नई दिल्ली के अख़बार टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 18 जनवरी, 1985 में यह ख़ुलासा निम्नलिखित शब्दों में प्रकाशित हुआ है—

"Memorising Ability: Men have a greater ability to memorise and process mathematical information than women but females are better with words, a Soviet scientist says, report UPI. Men dominate mathematical subjects due to the peculiarities of their memory, Dr. Vladimir konovalov told the Tass news agency."

"औरतों के मुक़ाबले में मर्दों के अंदर इस बात की ज़्यादा योग्यता होती है कि वे हिसाबी जानकारियों को याद रखें और उसे क्रम दे सकें, लेकिन औरतें शब्दों में ज़्यादा बेहतर होती हैं। यह बात एक रूसी वैज्ञानिक ने कही। डॉ. व्लादिमीर कोनोवालोफ़ ने तास न्यूज़ एजेंसी को बताया कि मर्द हिसाबी विषयों पर छाए हुए हैं। इसका कारण उनके अंदर याददाश्त की विशेष योग्यता है।"

जब यह एक जैविक घटना है कि औरत की याददाश्त स्वाभाविक रूप से

मर्द से कम होती है तो हक़ीक़त के मुताबिक़ सही बात यह है कि दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर रखी जाए। क़ुरआन का यह क़ानून क़ुरआन में टकराव साबित नहीं करता, बल्कि यह साबित करता है कि क़ुरआन एक ऐसी हस्ती की ओर से आया हुआ कलाम है, जो सारी हक़ीक़तों के बारे में जानता है। यही कारण है कि क़ुरआन के हुक्मों में सभी पहलुओं को ध्यान में रखा गया है।

बाहरी असमानता

इस मामले का दूसरा पहलू बाहरी असमानता है यानी किसी मामले में किताब के अंदर जो बात कही गई है, वह किताब के बाहर पाई जाने वाली हक़ीक़त के मुताबिक़ न हो। यह एक ऐसी कमी है, जो सारी इंसानी रचनाओं में पाई जाती है। इंसान अपनी जानकारी के दायरे में बोलता है और इंसान की जानकारी का दायरा क्योंकि सीमित है, इसलिए उसकी ज़ुबान या क़लम से ऐसी बातें निकलती रहती हैं, जो बाहरी हालात से समानता न रखती हों। यहाँ हम कुछ तुलनात्मक (comparative) उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

प्रकृति के क़ानून का उदाहरण

प्राचीन अरब में एक परंपरा यह थी कि कभी कोई भी आदमी अपनी संतान को इस शक की वजह से क़त्ल कर देता था कि परिवार के सदस्य ज़्यादा हो जाएँगे तो उनके लिए खाने-पीने का इंतज़ाम न हो सकेगा। इस सिलसिले में क़ुरआन में यह हुक्म आया—

> "अपनी औलाद को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो। हम उनको भी रोज़ी देंगे और तुमको भी। बेशक, उनको मार डालना एक बड़ा गुनाह है।" (17:31)

यह ऐलान मानो एक तरह का दावा था। इसका मतलब यह था कि भविष्य में आबादी की कोई भी वृद्धि ज़मीन पर रिज़्क़ की तंगी की समस्या पैदा नहीं करेगी। इंसान की संख्या के मुक़ाबले में आहारीय वस्तुओं (dietary items) का अनुपात हमेशा अनुकूल रूप से जारी रहेगा। जिस तरह आज सबको उनकी रोज़ी मिल रही है, उसी तरह आगे भी सबको उनकी रोज़ी मिलती रहेगी।

मुसलमान हर दौर में आस्थावान रूप में इस ऐलान की सच्चाई को मानते रहे हैं। यही कारण है कि मुसलमानों में कभी भी वह विचार पैदा नहीं हुआ, जिसे

मौजूदा ज़माने में परिवार नियोजन (family planning) कहते हैं। वे ईश्वर के रोज़ी देने के तरीक़े पर भरोसा करते हुए रिज़्क़ के मामले को ईश्वर पर छोड़ते रहे हैं, मगर इस ऐलान के 1,000 वर्ष बाद अंग्रेज़ अर्थशास्त्री रॉबर्ट माल्थस (1766-1834) पैदा हुआ। 1798 में 'जनसंख्या के नियम' पर उसकी मशहूर किताब छपी, जिसका पूरा नाम यह है—

'An essay on the principle of population as it affects the future improvement of society'.

माल्थस ने अपनी इस किताब में वह मशहूर दृष्टिकोण पेश किया, जिसका ख़ुलासा उसके शब्दों में यह था—

"Population when unchecked increases in a geometrical ratio. Subsistence only increases in an arithmetical ratio."

"जनसंख्या को अगर अनियंत्रित रूप से छोड़ दिया जाए तो वह ज्योमेट्रिक हिसाब से बढ़ती है, जबकि आहारीय वस्तुएँ केवल अरिथमेटिक हिसाब से बढ़ती हैं।"

इसका मतलब यह है कि इंसान की वृद्धि और आहारीय वस्तुओं की वृद्धि प्राकृतिक रूप से एक समान नहीं है। इंसानी आबादी की वृद्धि 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64 के अनुपात में होती है। इसके विपरीत भोज्य पदार्थों की वृद्धि का अनुपात 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 रहता है यानी इंसानी आबादी में वृद्धि बहुत तेज़ गति से होती है और भोज्य पदार्थों में वृद्धि बहुत धीमी गति से। इस आधार पर माल्थस ने कहा कि ज़मीन पर इंसानी नस्ल को बचाने के लिए ज़रूरी है कि आबादी पर नियंत्रण किया जाए। इंसान की संख्या को एक विशेष सीमा से आगे बढ़ने न दिया जाए, वरना बहुत जल्द ऐसा होगा कि जनसंख्या और आहारीय वस्तुओं में बहुत ज़्यादा अंतर के कारण भुखमरी का दौर शुरू हो जाएगा और असंख्य इंसान भूख के कारण मरने लगेंगे।

माल्थस की इस किताब ने दुनिया की सोच पर ज़बरदस्त प्रभाव डाला। उसके समर्थन में असंख्य लिखने वाले और बोलने वाले पैदा हो गए, यहाँ तक कि सारी दुनिया में जन्म को नियंत्रित करने और परिवार नियोजन की कोशिशें शुरू हो गईं, लेकिन अब खोजकर्ता इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि उसका अंदाज़ा सरासर ग़लत था। ग्वाइन डायर ने इन खोजों का ख़ुलासा एक लेख के रूप में प्रकाशित किया है। इस लेख का शीर्षक अर्थपूर्ण रूप में यह है— *'माल्थस : एक झूठा पैग़ंबर' Malthus: The false prophet*

निबंधकार जाँच-पड़ताल करते हुए लिखते हैं—

"It is the 150th anniversary of Malthus's death and his grim predictions have not yet come true. The world's population has doubled and redoubled in a geometrical progression as he foresaw, only slightly checked by wars and other catastrophes, and now stands at about eight times the total when he wrote. But food production has more than kept pace, and the present generation of humanity is on average the best fed in history."

"माल्थस की मौत को अब 150 वर्ष गुज़र चुके हैं और उसकी गंभीर भविष्यवाणियाँ अभी तक पूरी नहीं हुईं। दुनिया की आबादी ज्योमेट्रिक हिसाब से दोगुनी और चौगुनी हो गई। जैसा कि उसने कहा था, उसमें जंगों और दुर्घटनाओं के कारण बस थोड़ा-सा अंतर आया है। जब माल्थस ने अपनी किताब लिखी थी, उस समय की आबादी के मुक़ाबले में आज की दुनिया की आबादी लगभग 8 गुना हो चुकी है, लेकिन आहारीय पैदावार भी कुछ वृद्धि के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर चलती रही है और इंसान की मौजूदा नस्ल को औसत रूप से इतिहास का सबसे बढ़िया आहार मिल रहा है।"

(हिंदुस्तान टाइम्स; 28 दिसंबर, 1984)

रॉबर्ट माल्थस 'पारंपरिक कृषि' (conventional agriculture) के दौर में पैदा हुआ। वह यह अंदाज़ा न कर सका कि जल्द ही 'वैज्ञानिक कृषि' (scientific farming) का दौर आने वाला है, जिसके बाद पैदावार में असाधारण वृद्धि करना संभव हो जाएगा। पिछले 150 वर्ष में कृषि के तरीक़ों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब ऐसे चुने हुए बीज बोए जाते हैं, जो ज़्यादा फ़सल देने वाले हों। यही मामला पशुओं के साथ किया जाता है। खेतों को उपजाऊ करने के और ज़्यादा तरीक़े खोज लिये गए हैं। नई-नई खादें बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होने लगी हैं। मशीनों की मदद से उन स्थानों पर खेती होने लगी है, जहाँ पहले खेती करना संभव नज़र नहीं आता था। आज विकसित देशों में किसानों की संख्या में 90% कमी के बावजूद कृषि उत्पादन को 10 गुना तक बढ़ा लिया गया है आदि।

थर्ड वर्ल्ड (अविकसित देशों) का जो क्षेत्रफल है, इसकी दृष्टि से उसमें 33

बिलियन इंसानों की आबादी की गुंजाइश है, जबकि उसकी मौजूदा आबादी केवल 3 बिलियन (वर्ष 1960 के आँकड़े के अनुसार) है। थर्ड वर्ल्ड संभावित रूप से अपनी मौजूदा आबादी की लगभग 10 गुना संख्या को भोजन उपलब्ध कराने की क्षमता रखता है। एफ.ए.ओ. ने अंदाज़ा लगाया है कि थर्ड वर्ल्ड के देशों की आबादी अनियंत्रित रूप से बढ़ती रहे और सन 2000 में चार बिलियन से ज़्यादा हो जाए, तब भी कोई ख़तरे की बात नहीं, क्योंकि एक अंदाज़े के अनुसार उस समय जो आबादी होगी, उससे डेढ़ गुना आबादी को भोजन उपलब्ध करने के स्रोत फिर भी थर्ड वर्ल्ड के इलाक़ों में मौजूद होंगे।

आहार में यह वृद्धि जंगलों के काटे बिना संभव हो सकेगी। इसलिए हक़ीक़त यह है कि न तो वैश्विक स्तर पर किसी आहारीय संकट (dietary crisis) की कोई वास्तविक आशंका है और न क्षेत्रीय स्तर पर। ग्वाइन डायर ने अपनी रिपोर्ट इन शब्दों पर समाप्त की है—

> "Malthus was wrong. We are not doomed to breed ourselves into famine."
>
> "माल्थस ग़लती पर था। हमारे लिए यह मुक़द्दर नहीं कि हमारी आने वाली नस्लें अकाल में पैदा हों।"

इस घटना से पता चलता है कि माल्थस की किताब 'जनसंख्या का नियम' इंसानी ज़हन की पैदावार थी, जो काल और स्थान (time and space) अंदर रहकर सोचता है। इसके विपरीत क़ुरआन एक ऐसे ज़हन से निकला हुआ कथन है, जो काल और स्थान (time and space) से ऊपर उठकर सोचने की ताक़त रखता है। यही अंतर इस बात का कारण है कि माल्थस का कथन बाहरी हक़ीक़त से टकरा गया और क़ुरआन आख़िरी हद तक बाहरी हक़ीक़तों का घेराव किए हुए है। क़ुरआन के बयान और बाहरी घटना में कोई टकराव नहीं।

पवित्र किताबों का उदाहरण

यूसुफ़ के ज़माने में बीसवीं शताब्दी ईसा पूर्व मेंइसराईली, मिस्र (Egypt) में दाख़िल हुए और मूसा के ज़माने में तेरहवीं शताब्दी ईसा पूर्व में मिस्र से निकलकर सीना मरुस्थल में गए। इन दोनों घटनाओं का बाइबल में भी वर्णन है और क़ुरआन में भी, मगर क़ुरआन में किए गए वर्णन इतिहास से पूरी समानता रखते हैं, जबकि बाइबल में कई बातें ऐसी हैं, जो ऐतिहासिक घटनाओं से

समानता नहीं रखतीं। इसलिए बाइबल पर विश्वास करने वालों के लिए यह समस्या पैदा हो गई है कि वे बाइबल के बयान को लें या इतिहास को, क्योंकि दोनों को एक ही समय लेना संभव नहीं।

12 जनवरी, 1985 को नई दिल्ली के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज (तुग़लक़ाबाद) में सम्मेलन था। इस सम्मेलन के वक्ता एज़रा कॉलेट थे, जो भारत में रहने वाले यहूदियों की समिति (Council of Indian Jews) के अध्यक्ष हैं। भाषण का शीर्षक था— "यहूदीवाद क्या है?"

यहूदी वक्ता ने अपने भाषण में स्वाभाविक रूप से यहूदियों के इतिहास का वर्णन किया। उन्होंने मिस्र में उनके जाने और फिर वहाँ से निकलने का भी वर्णन किया। इस सिलसिले में यूसुफ़ और मूसा का ज़िक्र आया तो उन्होंने यूसुफ़ के समय में मिस्र के बादशाह को भी फ़िरऔन कहा और मूसा के समय में मिस्र के बादशाह को भी फ़िरऔन बताया।

हर ज्ञानी जानता है कि यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से ग़लत है। इतिहास बताता है कि 'फ़िरऔन' नाम के बादशाह केवल बाद में मूसा के ज़माने में हुए। इससे पहले यूसुफ़ के ज़माने में दूसरे लोग मिस्र के शासक थे।

यूसुफ़ जिस ज़माने में मिस्र में दाख़िल हुए, उस ज़माने में वहाँ उन लोगों का शासन था, जिनको इतिहास में हिक्सोस बादशाह (Hyksos : चरवाहा) कहा जाता है। ये लोग अरब नस्ल से संबंध रखते थे और उन्होंने बाहर से आकर मिस्र पर क़ब्ज़ा कर लिया था। यह ख़ानदान दो हज़ार वर्ष ईसा पूर्व से लेकर 15वीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंत तक मिस्र पर शासन करता रहा। इसके बाद मिस्र में विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह हुआ और हिक्सोस का शासन समाप्त हो गया।

इसके बाद मिस्र में मिस्र वालों का शासन स्थापित हुआ। उस समय जिस ख़ानदान को मिस्र की बादशाहत मिली, उसने अपने शासकों के लिए फ़िरऔन की उपाधि को पसंद किया। फ़िरऔन का शाब्दिक अर्थ सूरज देवता की संतान का है। उस ज़माने में मिस्र के लोग सूरज को पूजते थे। इसलिए शासकों ने ऐसे दिखाया किया कि उनका संबंध सूरज देवता से है, ताकि मिस्र के लोगों पर अपने शासन का अधिकार साबित किया जा सके।

एज़रा कॉलेट ने जो कुछ किया, वह मजबूर थे कि वैसा ही करें, क्योंकि बाइबल में ऐसा ही लिखा हुआ है। बाइबल यूसुफ़ के समय में मिस्र के बादशाह को भी फ़िरऔन कहती है और मूसा के समय में मिस्र के बादशाह को भी

फ़िरऔन कहती है। एज़रा कॉलेट या तो बाइबल को ले सकते थे या इतिहास को, दोनों को साथ लेना संभव न था। उन्होंने यहूदी परिषद का अध्यक्ष होने की हैसियत से इतिहास को छोड़ा और बाइबल को अपना लिया, लेकिन क़ुरआन इस तरह की विरोधाभासी बातों से ख़ाली है। इसलिए क़ुरआन के मानने वालों के लिए यह समस्या नहीं कि क़ुरआन को लेने के लिए उन्हें ऐतिहासिक वास्तविकता को छोड़ना पड़े।

जिस समय क़ुरआन आया उस समय यह ऐतिहासिक घटनाएँ लोगों को मालूम न थीं। यह इतिहास अभी तक प्राचीन स्मृतियों के रूप में ज़मीन के नीचे दफ़न था, जिनको बहुत बाद में ज़मीन की खुदाई से बरामद किया गया और उनकी बुनियाद पर मिस्र का इतिहास क्रमबद्ध किया गया।

इसके बावजूद हम देखते हैं कि क़ुरआन में मूसा के समय में बादशाह का वर्णन आता है तो क़ुरआन इसके लिए मालिके-मिस्र (मिस्र का बादशाह) शब्द का प्रयोग करता है और मूसा के समय में मिस्र के बादशाह का ज़िक्र आता है तो वह उसे बार-बार फ़िरऔन कहता है। इस तरह क़ुरआन का बयान बाहरी ऐतिहासिक हक़ीक़त के बिल्कुल समान है, जबकि बाइबल का बयान बाहरी ऐतिहासिक हक़ीक़त से टकरा रहा है। यह घटना बताती है कि क़ुरआन का रचयिता (लेखक) एक ऐसा रचयिता है, जो इंसानी जानकारी से आगे सारी हक़ीक़तों को सीधे तौर पर देख रहा है।

इतिहास का उदाहरण

क्रमिक विकास के सिद्धांत के अनुसार इंसान और जानवर, दोनों एक सम्मिलित वंश से संबंध रखते हैं। जानवरों की एक नस्ल क्रमिक विकास करते-करते बंदर (चिंपैंजी) तक पहुँची और बंदर की यह नस्ल अधिक विकास करते-करते इंसान बन गई।

इस सिलसिले में एक सवाल यह है कि अगर यह घटना सही है तो जानवर और इंसान के बीच की कड़ियाँ कहाँ हैं यानी वह प्रजातियाँ कौन-सी हैं, जो अभी विकास के बीच की यात्रा में थीं और इस आधार पर उनके अंदर कुछ हैवानी पहलू थे और कुछ इंसानी पहलू। हालाँकि हक़ीक़त में अभी कोई ऐसी बीच की प्रजाति की खोज नहीं हुई है, फिर भी क्रमिक विकास के विद्वानों को विश्वास है कि ऐसी प्रजातियाँ गुज़री हैं, लेकिन उनका सुराग़ अभी तक नहीं

मिला है। इन परिकल्पित कड़ियों को ग़लत रूप से गुमशुदा कड़ियों (missing links) का नाम दिया गया है।

सन 1912 में लंदन के अख़बारों ने जोशीले अंदाज़ में यह ख़बर दी कि बंदर और इंसान के बीच की एक गुमशुदा कड़ी की खोज कर ली गई है। यह वही कड़ी है, जिसे क्रमिक विकास के इतिहास में पिल्टडाउन इंसान (Piltdown Man) कहा जाता है। उसकी हक़ीक़त यह थी कि लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम को बहुत पुराने ज़माने का एक जबड़ा मिला, जिसका ढाँचा बंदर जैसा था, मगर उसके दाँत इंसान के दाँत की तरह थे। उस हड्डी के टुकड़े के आधार पर एक पूरा चित्र बनाया गया, जो देखने वालों को बंदर जैसा इंसान या इंसान जैसा बंदर दिखाई देता था। उसे पिल्टडाउन इंसान का नाम दिया गया, क्योंकि वह पिल्टडाउन नाम की जगह से मिला था।

पिल्टडाउन इंसान को तेज़ी से लोकप्रियता प्राप्त हुई। वह नियमानुसार पाठ्यक्रम की किताबों में शामिल कर लिया गया। उदाहरण के लिए— आर. एस. लुल की किताब 'ऑर्गेनिक एवोल्यूशन' (organic evolution) में बड़े-बड़े विद्वानों एवं चिंतकों ने इसकी गिनती आधुनिक इंसान के ज्ञानात्मक विजयों में की, जैसे— एच.जी. वेल्स (1866-1946) ने अपनी किताब 'आउटलाइन ऑफ़ हिस्ट्री' (The Outline of History) में और बर्ट्रेंड रसेल (1872–1970) ने अपनी किताब 'ए हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न फ़िलॉसफ़ी' (A History of Western Philosophy) में। इतिहास और जीव विज्ञान की किताबों में पिल्टडाउन इंसान का वर्णन इस प्रकार किया जाने लगा, जैसे कि वह एक पक्की हक़ीक़त हो।

लगभग आधी शताब्दी तक आधुनिक विद्वान इस 'महान खोज' के वशीभूत रहे। 1953 में कुछ विद्वानों को संदेह हुआ। उन्होंने ब्रिटिश म्यूज़ियम के लोहे के फायर प्रूफ़ बॉक्स से कथित जबड़ा निकाला। उसे वैज्ञानिक विधि से जाँचा। सभी संबंधित पहलुओं से उसकी जाँच-पड़ताल की। आख़िरकार वे इस नतीजे पर पहुँचे कि यह पूरी तरह से एक फ़रेब था, जिसे हक़ीक़त समझ लिया गया।

पिल्टडाउन इंसान की असल हक़ीक़त यह थी कि एक आदमी ने बंदर का एक जबड़ा लिया। उसे महोगनी रंग में रंगा और फिर उसके दाँत को रेती से घिसकर आदमी के दाँत की तरह बनाया। इसके बाद उसने यह जबड़ा यह कहकर ब्रिटिश

म्यूज़ियम के हवाले कर दिया कि यह उसे पिल्टडाउन (इंग्लैंड) में मिला है।

यह एक बड़ी दिलचस्प कहानी है। इसके विवरण के लिए कुछ हवाले यहाँ दिए जा रहे हैं—

I. *Encylopedia Britanica* (1984) 'Piltdown Man'
II. *Bulletin of the British Museum* (Natural History) Vol. 2, No.3 and 6
III. J. S. Weiner, *The Piltdown Forgery* (1955)
IV. Ronald Millar, *The Piltdown Man* (1972)
V. *Readers Digest;* November, 1956

फ़िरऔन

इसके मुक़ाबले में अब क़ुरआन से इसी स्थिति का एक उदाहरण लीजिए। यह मूसा के ज़माने में फ़िरऔन (pharaoh) का उदाहरण है। इसके बारे में क़ुरआन में जो शब्द आए थे, बाद का इतिहास आश्चर्यजनक रूप से इसकी पुष्टि करता है।

इतिहास के अनुसार मूसा के ज़माने में मिस्र का जो बादशाह डूबा, वह रामसेस द्वितीय (Ramesses II) का बेटा था। उसकी ख़ानदानी उपाधि फ़िरऔन और निजी नाम मरनफ़ता (Merneptah) था। क़ुरआन के अवतरण के समय फ़िरऔन का ज़िक्र केवल बाइबल की पांडुलिपि (manuscripts) में था। उसमें भी केवल यह लिखा हुआ था कि ईश्वर ने समुद्र के बीच में ही मिस्रियों को उथल-पुथल कर दिया और फ़िरऔन की सारी सेना को समुद्र में डुबो दिया (ख़ुरूज, 14:28)। उस समय क़ुरआन ने आश्चर्यजनक रूप से यह ऐलान किया कि फ़िरऔन का शरीर सुरक्षित है और वह दुनिया वालों के लिए सबक़ बनेगा—

"आज हम तेरे शरीर को बचा लेंगे, ताकि तू अपने बाद वालों के लिए निशानी हो।'' (10:92)

क़ुरआन में जब यह आयत उतरी तो वह बहुत ही अनोखी थी। उस समय किसी को भी यह मालूम न था कि फ़िरऔन का शरीर कहीं सुरक्षित हालत में मौजूद है। इस आयत के अवतरण पर इसी हालत में लगभग 1400 वर्ष गुज़र गए। प्रोफ़ेसर लॉरेट पहला आदमी है, जिसने 1898 ईस्वी में मिस्र के एक प्राचीन मक़बरे, पिरामिड में दाख़िल होकर खोज की कि यहाँ कथित फ़िरऔन की लाश ममी (mummy) के रूप में मौजूद है। 8 जुलाई, 1907 को इलियट स्मिथ (Elliot Smith) ने इस लाश के ऊपर लिपटी हुई चादर को हटाया। उसने उसका

नियमानुसार वैज्ञानिक अनुसंधान (scientific research) किया और फिर सन 1912 में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम है 'शाही ममियाँ' (The Royal Mummies)। इससे साबित हो गया कि यह ममी की लाश उसी फ़िरऔन की है, जो 3000 वर्ष पहले मूसा के ज़माने में डुबाया गया था। एक पश्चिमी विचारक के शब्दों में—

> "His earthly remains were saved by the will of God from destruction to become a sign to man, as it is written in the Quran."
>
> "फ़िरऔन का भौतिक शरीर (physical body) ईश्वर की मर्ज़ी से बरबाद होने से बचा लिया गया, ताकि वह इंसान के लिए एक निशानी हो, जैसा कि वह क़ुरआन में लिखा हुआ है।"

'क़ुरआन, बाइबल और विज्ञान' (*'The Bible, The Quran and Science*) के लेखक डॉक्टर मौरिस बुकाई (Maurice Bucaille) ने सन 1975 में फ़िरऔन की के इस लाश का मुआयना किया। इसके बाद उन्होंने अपनी किताब में जो अध्याय लिखा है, उसकी समाप्ति इन रोमांचक पंक्तियों पर हुई है—

> "Those who seek among modern data for proof of the veracity of the Holy Scriptures will find a magnificent illustration of the verses of the Quran dealing with the Pharoah's body by visiting the Royal Mummies Room of the Egyptian Museum, Cairo !"
>
> "वह लोग, जो पवित्र किताबों की सच्चाई के लिए मॉडर्न सबूत चाहते हैं, वे काहिरा के मिस्री म्यूज़ियम में शाही ममियों के कमरे को देखें। वहाँ वे क़ुरआन की उन आयतों की शानदार पुष्टि पा लेंगे, जो कि फ़िरऔन के शरीर से संबंध रखती हैं।"

क़ुरआन ने सातवीं शताब्दी ईस्वी में कहा कि फ़िरऔन का शरीर लोगों की निशानी के लिए सुरिक्षत है और वह 19वीं शताब्दी के आख़िर में बहुत ठीक हालत में बरामद हो गया। दूसरी ओर मौजूदा ज़माने के वैज्ञानिकों ने ऐलान किया कि पिल्टडाउन नाम की जगह पर उन्होंने एक ढाँचे की खोज की है, जो बहुत पुराने इंसान के शरीर का एक हिस्सा है और अगली जानकारी के तहत वह बिल्कुल बेबुनियाद साबित हो गया।

क्या इसके बाद भी इसमें कोई शक बाक़ी रहता है कि क़ुरआन एक ईश्वरीय किताब है? वह आम इंसानी रचनाओं की तरह कोई इंसानी रचना नहीं।

जीव विज्ञान का उदाहरण

पुराने ज़माने में जबकि मौजूदा वैज्ञानिक अवलोकन (observation) सामने नहीं आए थे, सारी दुनिया में अंधविश्वासी विचार फैले हुए थे। लोगों ने जाँच-पड़ताल के बिना ही अजीब-अजीब दृष्टिकोण बना लिये थे। यह दृष्टिकोण दोबारा समय की किताबों में ज़ाहिर होते थे। जो भी आदमी उस दौर में कोई किताब लिखता तो माहौल के प्रभाव से वह उन विचारों को भी दोहराने लगता था, जैसे—अरस्तू (322-384 ई०.) ने एक मौक़े पर पेट में परवरिश पाने वाले बच्चों का ज़िक्र किया है। इस सिलसिले में वह समय के पारंपरिक विचार के अनुसार यह कहता है कि पेट के बच्चों के स्वास्थ्य का संबंध हवाओं से है। अरस्तू के इस विचार का मज़ाक़ उड़ाते हुए बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है—

> "He said that children will be healthier if conceived when the wind is in the north. One gathers that the two Mrs Aristotles both had to run out and look at the weathercock every evening before going to bed." (p.17)
>
> "अरस्तू ने कहा कि बच्चे तब ज़्यादा तंदरुस्त होंगे, अगर उत्तरी दिशा में हवा चलने के समय उनका गर्भ ठहर जाए। एक आदमी इससे अंदाज़ा लगा सकता है कि अरस्तू की दोनों पत्नियाँ हर शाम को बिस्तर पर जाने से पहले दौड़कर बाहर जाती होंगी और देखती होंगी कि हवा का रुख़ किस दिशा में है।"

क़ुरआन इसी पुराने दौर में उतरा। इसमें ज्ञान की विभिन्न शाख़ाओं से संबंधित बहुत बड़ी संख्या में हवाले मौजूद हैं, मगर क़ुरआन में कोई एक भी उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें समय के पारंपरिक विचारों का प्रतिबिंब (reflection of traditional ideas) पाया जाता हो।

आकाशीय पिंडों का घूमना

क़ुरआन (21:33, 36:40) में सूरज और चाँद का ज़िक्र करते हुए बताया गया है कि वह सब अपने-अपने दायरे (फ़लक) में तैर रहे हैं। डॉक्टर मौरिस बुकाई ने इन आयतों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है और दिखाया है कि यहाँ

'फलक' का मतलब वही चीज़ है, जिसे मौजूदा ज़माने में दायरा (orbit) कहा जाता है। इसके बाद वे लिखते हैं—

> "It is shown that the sun moves in an orbit, but no indication is given as to what this orbit might be in relation to the Earth. At the time of Qur'anic Revelation, it was thought that the sun moved while the Earth stood still. This was the system of geocentrism that had held sway since the time of Ptolemy, second century B.C., and was to continue to do so until Copernicus in the sixteenth century A.D. Although people supported this concept at the time of Muhammad, it does not appear anywhere in the Qur'an, either here or elsewhere." (p. 159)
>
> "कथित आयतों में यह दिखाया गया है कि सूरज एक दायरे में घूमता है, मगर इस बात का कोई संकेत नहीं दिया गया है कि धरती के संबंध में उसका दायरा क्या है। क़ुरआन जिस ज़माने में भेजा गया उस समय यह माना जाता था कि सूरज पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूम रहा है, जबकि पृथ्वी ठहरी हुई है। यह भू-केंद्रीय (geocentric) व्यवस्था थी, जो दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में टॉलमी के दौर से छा गई थी। वह सोलहवीं शताब्दी तक कॉपरनिकस तक बाक़ी रही। हालाँकि हज़रत मुहम्मद के ज़माने में लोग इस दृष्टिकोण का समर्थन करते थे, मगर क़ुरआन में वह कहीं ज़ाहिर नहीं हुआ— न इन दोनों आयतों में और न ही किसी और आयत में।"

भ्रूणीय विकास

इस सिलसिले में एक दिलचस्प उदाहरण वह ख़बर है, जो 1984 के आख़िर में विभिन्न अख़बारों में छपी थी। कनाडा के अख़बार 'द सिटीज़न' (22 नवंबर, 1984) ने यह ख़बर इन शब्दों में प्रकाशित की थी—

Ancient Holy Book 1,300 Years Ahead of its Time.

'प्राचीन पवित्र किताब अपने समय से 1,300 वर्ष आगे'

इसी तरह नई दिल्ली के अख़बार 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' (10 दिसंबर, 1984) में यह ख़बर निम्नलिखित शब्दों में छपी—

‘Kor’an Scores Over Modern Science.’

‘क़ुरआन ने आधुनिक विज्ञान पर बाज़ी मार ली’

डॉक्टर कीथ मूर भ्रूण विज्ञान (embryology) के विशेषज्ञ हैं और कनाड़ा की टोरंटो यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं। उन्होंने क़ुरआन की कुछ आयतों (40:14,39:6) और आधुनिक अनुसंधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस सिलसिले में वह अपने साथियों के साथ कई बार किंग अब्दुल अज़ीज़ यूनिवर्सिटी (जेद्दा, सऊदी अरब) भी गए। उन्होंने पाया कि क़ुरआन का बयान आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक खोजों के बिल्कुल समान है। यह देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई कि क़ुरआन में क्योंकर वह हक़ीक़तें मौजूद हैं, जिन्हें पश्चिमी दुनिया ने पहली बार केवल 1940 में मालूम किया। इस सिलसिले में उन्होंने एक लेख लिखा है, जिसमें वे कथित घटना का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

“The 1300 Year old Koran contains passages so accurate about embryonic development that Muslims can reasonably believe them to be revelations from God.”

“1300 वर्षीय प्राचीन क़ुरआन में भ्रूणीय विकास के बारे में इतना सटीक वर्णन मौजूद है कि मुसलमान उचित रूप से यह विश्वास कर सकते हैं कि वह ईश्वर की ओर से उतारी हुई आयतें हैं।”

न्यूटन का प्रकाश का सिद्धांत

इंसान जब किसी विषय पर बात करता है तो स्पष्ट हो जाता है कि वह ‘वर्तमान’ में बोल रहा है, उसे भविष्य की कोई ख़बर नहीं। कोई इंसान आगे ज़ाहिर होने वाली हक़ीक़तों को नहीं जानता, इसलिए वह उनको ध्यान मैं रखकर अपनी बात नहीं कर सकता। यह एक ऐसा मापदंड है, जिस पर आदमी हमेशा नाकाम साबित होता है। इसके विपरीत क़ुरआन को देखा जाए तो ऐसा मालूम होता है कि क़ुरआन का रचयिता एक ऐसी हस्ती है, जिसकी नज़र अतीत से भविष्य तक समान रूप से फैली हुई है। वह आज की ज्ञात घटनाओं को भी जानता है और उन घटनाओं को भी, जो कल इंसान के ज्ञान में आएँगी। उदाहरण के लिए— न्यूटन (1642-1727) ने प्रकाश के बारे में यह दृष्टिकोण बनाया कि यह छोटे-छोटे प्रकाशमान कण हैं, जो अपने स्रोत से निकलकर वातावरण में उड़ते हैं। इस सिद्धांत को विज्ञान के इतिहास में ‘प्रकाश कणिका का सिद्धांत’ (corpuscular theory of light) कहा जाता है।

A theory of optics in which light is treated as a stream of particles.

न्यूटन के असाधारण प्रभावों के तहत यह सिद्धांत 1820 तक ज्ञानात्मक दुनिया पर छाया रहा। इसके बाद इसका पतन शुरू हुआ। अनेक वैज्ञानिकों की जाँच-पड़ताल, विशेष रूप से फोटोंस (Photons) की प्रक्रिया की खोज ने प्रकाश कणिका के सिद्धांत को समाप्त कर दिया। प्रोफ़ेसर यंग और दूसरे वैज्ञानिकों की खोजों ने विद्वानों को संतुष्ट कर दिया कि प्रकाश बुनियादी तौर पर तरंगों (waves) जैसी विशेषताएँ रखता है, जो स्पष्ट है कि न्यूटन के कणिका सिद्धांत के विपरीत है।

Young's work convinced scientists that light has essential wave characteristics. It is a contradiction to Newton's corpuscular Particle theory. (*Encyclopedia Britannica,* 1984, Vol 19, p. 665)

न्यूटन ने अठारहवीं शताब्दी में अपना सिद्धांत पेश किया और केवल दो सौ वर्ष के अंदर ही वह ग़लत साबित हो गया। इसके विपरीत क़ुरआन ने सातवीं शताब्दी में अपना संदेश दुनिया के सामने रखा और 1400 वर्ष गुज़रने के बाद भी उसकी सच्चाई आज तक संदिग्ध नहीं हुई। क्या इसके बाद भी इस विश्वास के लिए किसी सबूत की ज़रूरत है कि न्यूटन जैसे लोगों का कथन सीमित मानवीय कथन है और क़ुरआन असीमित ज़हन से निकला हुआ ईश्वरीय कथन। क़ुरआन के बयानों का हमेशा के लिए सही साबित होना एक बहुत ही असाधारण गुण है, जो किसी भी दूसरे कथन को प्राप्त नहीं। केवल यही घटना इस बात को साबित करने के लिए काफ़ी है कि क़ुरआन ईश्वरीय कथन है और बाक़ी सभी कथन मानवीय कथन है।

कायनात की शुरुआत

क़ुरआन में वर्णन है— "क्या इनकार करने वालों ने नहीं देखा कि ज़मीन और आसमान मिले हुए थे, फिर हमने दोनों को खोल दिया।" (21:30)

इस आयत में 'रत्क़' और 'फ़त्क़' शब्द इस्तेमाल हुए हैं। 'रत्क़' का मतलब है 'मुंज़मुल अज्ज़ा' यानी किसी चीज़ के सभी अंगों का एक-दूसरे में घुसा हुआ और सिमटा हुआ होना और 'फ़त्क़' का शब्द इसके विपरीत क्रिया के लिए है यानी मिले हुए अंगों को फाड़कर अलग-अलग कर देना।

यह आयत सातवीं शताब्दी में उतरी। इससे मालूम होता है कि कायनात के विभिन्न अंग शुरुआत में आपस में मिले हुए और सिमटे हुए थे। इसके बाद ईश्वर ने उनको फाड़कर अलग कर दिया, लेकिन क़ुरआन के अवतरण के बाद कई शताब्दियों बाद तक इंसान को मालूम न था कि कायनात में वह कौन-सी घटना घटी है, जिसे क़ुरआन ने 'रत्क़' और 'फ़त्क़' से स्पष्ट किया है। पहली बार इसकी मौलिकता 1927 ई० में तब सामने आई, जबकि जॉर्ज लेमैत्रे ने वह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसे आम तौर पर 'बिग बैंग' (Big Bang) कहा जाता है।

आधुनिक अवलोकन (modern observation) बताता है कि कायनात हर पल अपने चारों ओर फैल रही है। इसलिए मौजूदा कायनात को फैलती हुई कायनात (expending universe) कहा जाता है। इस तरह के विभिन्न अवलोकनों ने वैज्ञानिकों को इस दृष्टिकोण तक पहुँचाया है कि कायनात शुरुआत में सिमटी हुई हालत में थी। उस समय फैली हुई कायनात के सभी अंग बहुत मज़बूती से आपस में जुड़े हुए थे। इस प्रारंभिक तत्त्व को 'कॉस्मिक एग' (cosmic egg) या 'सुपर एटम' (super atom) कहा जाता है।

शुरुआत में वैज्ञानिक क्षेत्र में इसका विरोध हुआ। 1948 तक बिग बैंग की तुलना में स्टेडी स्टेट परिकल्पना (steady-state hypothesis) वैज्ञानिकों के यहाँ ज़्यादा ध्यान देने योग्य बनी रही, मगर 1950 से ज्ञान का भार बिग बैंग के पक्ष में बढ़ने लगा। 1965 में बैकग्राउंड रेडिऐशन (background radiation) की खोज ने इसकी अधिक पुष्टि की, क्योंकि वैज्ञानिकों का विचार है कि यह शुरुआती विस्फोट के रेडियायी अवशेष (radiation remnant) हैं, जो अभी तक कायनात के कुछ हिस्सों में मौजूद हैं। इसी तरह 1981 में कुछ आकाशगंगाओं (galaxies) की खोज, जो हमारी पृथ्वी से 10 अरब प्रकाश वर्ष (light years) की दूरी पर स्थित हैं आदि। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) में बिग बैंग के शीर्षक के तहत स्वीकार किया गया है—

"और अब इस दृष्टिकोण को अधिकतर कोस्मोलोजिस्ट (Cosmologists, अन्तरिक्ष विज्ञानी) का समर्थन प्राप्त है।"

"And it is now favoured by most cosmologists."

यह घटना इस बात का बहुत ही स्पष्ट सबूत है कि क़ुरआन का लेखक एक ऐसी हस्ती है, जिसकी नज़र में अतीत से लेकर भविष्य तक की सारी सच्चाइयाँ हैं। वह चीज़ों को वहाँ से देख रहा है, जहाँ से इंसान नहीं देख सकता। वह उस समय भी पूरी तरह जान रहा होता है, जबकि दूसरों को कोई ज्ञान नहीं होता।

शहद की चिकित्सीय महत्ता

क़ुरआन में शहद के बारे में बताया गया है कि इसके अंदर शिफ़ा* है (16:69) । मुसलमानों ने इस आयत की रोशनी में शहद के चिकित्सीय पहलुओं पर बहुत ज़ोर दिया। मुसलमानों के यहाँ औषधि-निर्माण की कला में शहद को ख़ास दर्जा हासिल रहा है, लेकिन पश्चिमी दुनिया शताब्दियों तक इसकी चिकित्सीय महत्ता से बेख़बर रही। यूरोप में अभी उन्नीसवीं शताब्दी तक शहद को बस एक तरल भोजन (liquid food) के रूप में जाना जाता था। यह केवल बीसवीं शताब्दी की बात है कि यूरोप के विद्वानों ने यह खोज की कि शहद में रोगाणुनाशक तत्त्व (antiseptic properties) मौजूद हैं।

इस सिलसिले में हम आधुनिक खोजों का ख़ुलासा एक अमेरिकी पत्रिका से नक़ल करते हैं—

> "Honey is a powerful destroyer of germs which produce human diseases. It was not until the twentieth century, however, that this was demonstrated scientifically. Dr. W.G. Sackett, formerly with the Colorado Agricultural College at Fort Collins, attempted to prove that honey was a carrier of disease much like milk. To his surprise, all the disease germs he introduced into pure honey were quickly destroyed. The germ that causes typhoid fever died in pure honey after 48 hours' exposure. Enteritidis, causing intestinal inflation, lived 48 hours. A hardy germ which causes broncho-pneumonia and septicemia held out for four days. Bacillus coli Communis which under certain conditions causes peritonitis, was dead on the fifth day of experiment. According to Dr. Bodog Beck, there are many other germs equally destructible in honey. The reason for this bactericidal quality in honey, he said, is in its hygroscopic ability. It literally draws every particle of moisture out of germs. Germs, like any other living

---

* इलाज, चिकित्सा, रोग का इलाज करने की ताक़त।

organism, perish without water. This power to absorb moisture is almost unlimited. Honey will draw moisture from metal, glas and even stone rocks.”

(*Rosicrucian Digest; September*, 1975; p.11)

“शहद कीटाणुओं को मारने वाली चीज़ है, जो कि इंसानी बीमारियाँ पैदा करते हैं, लेकिन बीसवीं शताब्दी से पहले तक इसे ज्ञानात्मक रूप से दिखाया नहीं जा सका था। डॉ. सैकेट, जो इससे पहले फोर्ट कोलिंस के एग्रीकल्चर कॉलेज से जुड़े हुए थे, उन्होंने यह साबित करने की कोशिश की कि शहद के अंदर बीमारी के कीटाणु परवरिश पाते हैं; जिस तरह वे दूध में परवरिश पाते हैं, मगर उन्हें तब बड़ी हैरानी हुई, जब रिसर्च के दौरान उन्होंने पाया कि बीमारी पैदा करने वाले जिन कीटाणुओं को उन्होंने शुद्ध शहद के अंदर डाला था, वह सब-के-सब जल्दी ही मर गए। टायफ़ाइड बुख़ार के कीटाणु केवल 48 घंटे के अंदर मर गए। कुछ ताक़तवर कीटाणु चार दिन या पाँच दिन से ज़्यादा ज़िंदा न रह सके। डॉ. बोडोग बेक ने बताया है कि शहद के अंदर कीटाणुओं को मारने की इस ख़ासियत का साधारण-सा कारण यह है कि शहद नमी को चूस लेने की योग्यता रखता है। शहद कीटाणुओं की नमी का हर अंश खींच लेता है। कीटाणु दूसरे जीवों की तरह पानी के बिना मर जाते हैं। शहद के अंदर पानी को सोख लेने की क्षमता असीमित मात्रा में है। वह धातु, शीशा और पत्थर तक से नमी को खींच लेता है।”

क़ुरआन की श्रेष्ठता

अरबी भाषा सभी भाषाओं के बीच एक आश्चर्यचकित अपवाद (exception) है। इतिहास बताता है कि एक भाषा की आयु पाँच सौ वर्ष से ज़्यादा नहीं होती। लगभग पाँच सौ वर्ष में एक भाषा इतनी ज़्यादा बदल जाती है कि अगली पीढ़ी के लोगों के लिए पिछले लोगों की बात समझना बहुत मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिए— ज्योफ्रे चॉसर (1342-1400) और विलियम शेक्सपियर (1564-1616) अंग्रेज़ी भाषा के कवि और साहित्यकार थे, मगर आज का एक सामान्य अंग्रेज़ी जानने वाला उनके द्वारा लिखी किताबों को पढ़ना चाहे तो उसे उन्हें अनुवाद (translation) की मदद से पढ़ना पड़ेगा। चॉसर

और शेक्सपियर का कथन आधुनिक अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम में अनुवाद करके पढ़ाया जाता है। लगभग वैसे ही, जैसे दूसरी भाषा की किताबें अनुवाद करके पढ़ाई जाती हैं, लेकिन अरबी भाषा का मामला ख़ासकर इससे अलग है।

अरबी भाषा पिछले डेढ़ हज़ार वर्ष से ज़्यादा एक समान हालत पर अभी भी क़ायम है। इसके शब्दों और शैली में निश्चित ही विकास हुआ है, मगर यह विकास इस तरह हुआ है कि शब्द अपने शुरुआती मतलब को ज्यों-का-त्यों रखे हुए हैं। पुराने अरब का कोई आदमी आज दोबारा ज़िंदा हो जाए तो आज के अरबों में भी वह उसी तरह बोलेगा और समझा जाएगा, जिस तरह छठी और सातवीं शताब्दी ई० के अरब में वह बोलता था और समझा जाता था।

यह पूरी तरह से क़ुरआन का चमत्कार है। ऐसा मालूम होता है कि क़ुरआन ने अरबी भाषा को पकड़ रखा है, ताकि जिस तरह क़ुरआन को क़यामत तक बाक़ी रहना है, उसी तरह अरबी भाषा भी ज़िंदा और समझने लायक़ हालत में क़यामत तक बाक़ी रहे। यह किताब कभी 'कलात्मक साहित्य' (classical literature) की अलमारी में न जाने पाए, वह हमेशा लोगों के बीच पढ़ी और समझी जाती रहे।

यही मामला विद्याओं (sciences) का भी है। यहाँ भी ऐसा मालूम होता है कि क़ुरआन ने विद्याओं को पकड़ रखा है। वह विद्याओं को पकड़कर बैठ गया है, ताकि क़ुरआन ने किसी मामले में जो कुछ कह दिया है, वही हमेशा अंतिम अक्षर की हैसियत से बाक़ी रहे। इसलिए असंख्य ज्ञानात्मक उन्नति के बावजूद विद्याएँ आख़िरकार वहीं बाक़ी रहती हैं या वहीं लौट आती हैं, जहाँ क़ुरआन ने पहले ही दिन उनको रख दिया था।

एक तरफ़ तो इंसानी कथन का उदाहरण है कि वह छोटे-छोटे मामलों में भी इस पैमाने पर पूरा नहीं उतरता, जबकि क़ुरआन बहुत बड़े और गहरे मामलों में भी अपनी बेहतरीन सच्चाइयों को स्थापित किए हुए है। यहाँ मैं एक तुलनात्मक उदाहरण देना चाहूँगा।

अरस्तू ने अपने काल्पनिक समाज में औरत को कमतर दर्जा दिया है। इसका सबूत उसके नज़दीक यह है कि औरत के मुँह में मर्द से कम दाँत होते हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने इसका मज़ाक उड़ाया है। उसने अपनी किताब 'द इम्पैक्ट ऑफ़ साइंस ऑन सोसाइटी' (*The Impact of Science on Society*) में अरस्तू का मज़ाक़ उड़ाते हुए लिखा है—

"Aristotle mentioned that women have fewer teeth than men; although he was twice married, it never occurred to him to verify this statement by examining his wive's mouth." (p. 17)

"अरस्तू ने दावा किया कि औरतों के यहाँ मर्दों से कम दाँत होते हैं। हालाँकि अरस्तू की दो बार शादी हुई थी, मगर उसने कभी यह विचार नहीं किया कि वह अपनी पत्नियों के मुँह की जाँच कर इस बात की पुष्टि कर ले।"

अरस्तू का बयान वास्तविक घटना पर हावी न हो सका। इसके विपरीत क़ुरआन के बयान वास्तविक घटनाओं का इस तरह घेराव किए हुए हैं कि दोनों कभी एक-दूसरे के ख़िलाफ़ नहीं जाते।

यहाँ मैं एक उदाहरण देना चाहूँगा। क़ुरआन में कहा गया है कि ईश्वर इस कायनात का शासक है। वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ जिस तरह चाहता है, इसे चलाता है। पिछले हज़ारों वर्ष से ईश्वर की यह कल्पना स्वीकृत रूप से चली आ रही थी और इंसान इसे बिना किसी विवाद के माने हुए था, लेकिन मौजूदा ज़माने में ज्ञान की उन्नति हुई तो इंसान ने यह दृष्टिकोण स्थापित कर लिया कि घटनाओं के पीछे ज्ञात भौतिक कारणों के सिवा कोई ताक़त नहीं। सारी घटनाएँ भौतिक कारणों और प्रभावों के तहत घटती हैं और भौतिक नियमों के तहत उनकी पूरी व्याख्या की जा सकती है, लेकिन बाद की ज्ञानात्मक जाँच-पड़ताल ने इस कल्पना को समाप्त कर दिया। अब ज्ञान दोबारा वहीं आ गया, जहाँ वह शुरुआत में ठहरा हुआ था।

कार्यकारण के नियम की मृत्यु

कहा जाता है कि न्यूटन (1642-1727) अपने बाग़ में था। उसने सेब के एक पेड़ से सेब को गिरते हुए देखा। उसने सोचा 'सेब का फल शाख़ से अलग होकर नीचे क्यों गिरा? वह ऊपर क्यों नहीं चला गया?'। इस सवाल ने आख़िर में उसे यहाँ तक पहुँचाया कि ज़मीन में खींचने की ताक़त है। वह हर चीज़ को अपनी ओर खींच रही है। यही कारण है कि फल पेड़ से टूटकर ज़मीन पर गिरता है, वह ऊपर की ओर नहीं जाता, लेकिन यह आधी हक़ीक़त थी। न्यूटन को सोचना चाहिए था कि पेड़ का फल अगर ऊपर से नीचे गिरता है तो उसी पेड़ का तना नीचे से ऊपर की ओर क्यों जाता है। एक ही पेड़ है और उसकी जड़ें

ज़मीन में नीचे की ओर जा रही हैं। इसका फल टूटता है तो वह गिरकर नीचे आ जाता है, लेकिन इसी पेड़ का तना और इसकी शाख़ें ज़मीन से उठकर ऊपर की ओर चली जा रही हैं।

पेड़ का यह दो तरह का पहलू न्यूटन की परिकल्पना (hypothesis) को नकार रहा था, फिर भी उसने मामले के एक पहलू को छोड़कर उसके दूसरे पहलू को ले लिया। फिर इसी के प्रकाश में उसने अंतरिक्ष में फैली हुई सौर-पद्धति (solar system) के नियम बनाए। वह इस नतीजे पर पहुँचा कि सभी आकाशीय पिंडों (celestial bodies) में एक विशेष अनुपात से खींचने की ताक़त मौजूद होती है। यही आकर्षण शक्ति सूरज और इसके चारों ओर घूमने वाले ग्रहों को सँभाले हुए है और इसे उचित अनुपात में गतिमान रखती है।

यह विचार-शैली और अधिक आगे बढ़ी, यहाँ तक कि आइंस्टीन (1879-1955) ने अपने सापेक्षता के सिद्धांत (theory of relativity) के तहत इसे और अधिक मज़बूत किया। आइंस्टीन की जाँच-पड़ताल हालाँकि न्यूटन के सभी सिद्धांतों की पुष्टि नहीं करती, फिर भी सौर-पद्धति के सिलसिले में इसके दृष्टिकोण का आधार गुरुत्वाकर्षण (gravity) के नियम पर ही स्थापित है।

> "Einstein's theory of relativity declare that gravity controls the behaviour of planets, star, galaxies and the universe itself and does it in a predictable manner."
>
> "आइंस्टीन का सापेक्षता का सिद्धांत कहता है कि गुरुत्वाकर्षण ग्रहों, नक्षत्रों, आकाशगंगाओं और ख़ुद कायनात की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। यह प्रक्रिया इस तरह होती है कि इसकी भविष्यवाणी की जा सकती है।"

इस वैज्ञानिक खोज को ह्यूम (1711-1776) और दूसरे विचारकों ने दर्शनशास्त्र बनाया। उन्होंने कहा कि कायनात की सारी व्यवस्था कार्यकारण के नियम (principle of causation) पर चल रही है। जब तक कारण व प्रभाव की कड़ियाँ मालूम नहीं थीं, तब तक इंसान यह समझता रहा कि कायनात को कंट्रोल करने वाला एक ईश्वर है, मगर अब हमें कारण व प्रभाव के नियमों का ज्ञान हो गया है। अब हम यह दावा कर सकते हैं कि कार्यकारण (causation) का भौतिक नियम कायनात को गतिमान करने वाला है, न कि कोई कल्पित ईश्वर , मगर बाद के अनुसंधानों ने इस कल्पना को समाप्त कर दिया। बाद में डेरॉक, हैज़नबर्ग और दूसरे वैज्ञानिकों ने एटम के ढाँचे का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि एटम

की व्यवस्था उस नियम को रद्द कर रही है, जो सौर-पद्धति के अध्ययन के आधार पर अपनाई गई थी।

इस दूसरे दृष्टिकोण को क्वांटम सिद्धांत (the theory of quantum mechanics) कहा जाता है और वह कथित कार्यकारण के नियम को पूरा रद्द करता है।

> "The theory of Quantum mechanics maintains that, at the atomic level, matter behaves randomly."
>
> "क्वांटम मैकेनिक्स का सिद्धांत यह कहता है कि एटम की सतह पर पदार्थ अक्रमबद्ध अंदाज़ में क्रिया करता है।"

विज्ञान में किसी 'नियम' का मतलब यह होता है कि वह सारी दुनिया में एक समान रूप से काम करता हो। अगर एक मामला भी ऐसा हो, जिस पर वह नियम चस्पाँ न होता हो तो ज्ञानात्मक रूप से उसका प्रमाणित नियम होना संदिग्ध हो जाता है। इसलिए जब यह मालूम हुआ कि एटम की सतह पर पदार्थ इस तरह प्रक्रिया नहीं करता, जिसका अवलोकन सौर-पद्धति की सतह पर किया गया था तो कार्यकारण वैज्ञानिक नियम की हैसियत से रद्द हो गया।

आइंस्टीन को यह बात समझ में न आने वाली मालूम हुई, क्योंकि इस तरह कायनात तात्त्विक करिश्मे (elemental miracle) के बजाय इरादी करिश्मा मालूम हो रही थी। उसने इस समस्या पर नियमानुसार जाँच-पड़ताल शुरू की। अपनी ज़िंदगी के आख़िरी 30 वर्ष उसने इस कोशिश में बिता दिए कि प्राकृतिक व्यवस्था में इस 'टकराव' को ख़त्म करे। सौर-पद्धति और एटमी व्यवस्था, दोनों की प्रक्रिया को एक क़ानून के तहत व्यवस्थित कर सके, लेकिन वह इसमें सफल नहीं हुआ, यहाँ तक कि आख़िर में असफल ही मर गया।

> Einstein spent the last 30 years of his life trying to reconcile these seeming contradictions of nature. He rejected the randomness of quantum mechanics. "I cannot believe that God plays dice with the cosmos," He said.
>
> "आइंस्टीन ने अपनी ज़िंदगी के आख़िरी 30 वर्ष इस कोशिश में बिता दिए कि प्रकृति के इस सीधे टकराव वाले नियम को एक-दूसरे के अनुरूप (compatible) करे। उसने क्वांटम सिद्धांत की अक्रमबद्धता को मानने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि मैं विश्वास नहीं कर सकता कि ईश्वर कायनात को पासा फेंककर चला रहा है।"

ऐसा मालूम होता है कि क़ुरआन का बयान कायनात को पकड़े हुए है। सौर-पद्धति की गतविधि का अध्ययन करके इंसान ने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में यह राय क़ायम कर ली कि उसकी गतिविधि ज्ञात भौतिक कारणों के तहत हो रही है। यह सर्वशक्तिमान ईश्वर के क़ुरआनी विचार को मानो रद्द करना था, लेकिन ज्ञान का दरिया जब आगे बढ़ा तो दोबारा क़ुरआन वाली बात सही साबित हो गई। बीसवीं शताब्दी में एटमी व्यवस्था के अध्ययन ने बताया कि एटम की सतह पर उसके कणों की गति का कोई ज्ञात नियम नहीं।

एक वैज्ञानिक इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखता है—

> "The Laws of physics discovered on earth contain arbitrary numbers, like the ratio of the mass of an electron to the mass of a proton, which is roughly 1840 to one. Why? Did the creator arbitrarily choose these numbers?" (Ian Roxburg)
>
> "भौतिक विज्ञान के नियमों को, जिनकी खोज ज़मीन पर की गई है, वह मनमानी गिनतियों पर आधारित हैं, जैसे— इलेक्ट्रॉन के तत्त्व की मात्रा का अनुपात एक प्रोटोन के तत्त्व की मात्रा से, जो कि लगभग 1840 की तुलना में एक होती है। क्यों? क्या एक रचयिता ने मनमाने तौर पर इन्हीं गिनतियों का चुनाव कर रखा है?" (संडे टाइम्स, लंदन; 4 दिसंबर,1977)

यह शब्द विज्ञान की भाषा में इस बात की स्वीकृति हैं कि कायनात इंसानी ज्ञान के दायरे में नहीं आती। कायनात एक पूर्ण प्रभुत्वशाली ईश्वर की इच्छा का प्रकटन (manifestation) है और ईश्वर की इच्छा की कल्पना के तहत ही उसका सही स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

क़ुरआन : ईश्वर की आवाज़

कायनात का एक राज़ है और जो किताब इस राज़ को खोलती है, वह क़ुरआन है। यह हक़ीक़त है कि ईश्वर की किताब के बिना कोई आदमी ज़िंदगी और कायनात की पहेली को हल नहीं कर सकता। मैंने वर्तमान में बड़े विस्तार के साथ मार्क्सवाद (Marxism) का अध्ययन किया है। मुझे महसूस हुआ कि मार्क्स असाधारण दिलो-दिमाग़ का आदमी था। ऐसा कि उस जैसी योग्यता वाले बहुत कम इंसान इतिहास में पैदा हुए हैं, मगर उसने ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें कही हैं कि इतिहास में उस जैसी मूर्खतापूर्ण बातें बहुत कम लोगों ने की होंगी और इसका कारण केवल यह है कि उसने क़ुरआन का अध्ययन नहीं किया था। उसे ज्ञान का वह सिरा नहीं मिला था, जिसके बिना ज़िंदगी के मामलों में कोई सही और निश्चित राय क़ायम नहीं की जा सकती।

एक दवा, ज़ो किसी कारख़ाने से बनकर निकलती है, उसके साथ उसे इस्तेमाल करने का तरीक़ा काग़ज़ पर प्रिंट करके रख दिया जाता है, जिसमें लिखा हुआ होता है कि यह दवा किस रोग के लिए है, किन चीज़ों से मिलकर बनी है और किस तरह उसे इस्तेमाल करना चाहिए, लेकिन आदमी इस हाल में पैदा होता है कि उसे कुछ नहीं मालूम होता कि वह क्या है और किस तरह उसे दुनिया में लाकर डाल दिया गया है। वह अपने साथ कोई किताब लेकर नहीं आता और न ही किसी पहाड़ की चोटी पर ऐसा कोई बोर्ड लगा हुआ है कि जहाँ इन सवालों का जवाब लिखकर रख दिया गया हो। इस परिस्थिति का नतीजा यह हुआ कि वह असल हक़ीक़त से बेख़बर होकर अपने और ज़मीन व आसमान के बारे में अजीब-अजीब राय क़ायम करने लगता है। वह अपने वुजूद पर विचार करता है तो वह उसे बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों का एक आश्चर्यजनक संग्रह नज़र आता है, जिसे बनाने में उसके अपने इरादे व कर्म का कोई दख़ल नहीं है। फिर अपने वजूद से बाहर की दुनिया पर नज़र डालता है तो उसे एक बहुत ही फैली हुई कायनात मिलती है, जिसका वह घेराव नहीं कर

सकता, जिसे वह पार नहीं कर सकता, जिसके अंदर छुपे हुए ख़ज़ानों की वह गिनती नहीं कर सकता। यह सब क्या है और क्यों है? यह दुनिया कहाँ से शुरू हुई है और कहाँ जाकर ख़त्म होगी? इस ज़िंदगी और वजूद का मक़सद क्या है? वह अपने आपको इन चीज़ों के बारे में बिल्कुल अनजान पाता है।

इंसान को आँख दी गई है, मगर वह आँख ऐसी है, जो किसी चीज़ के केवल बाहरी रूप को देख सकती है। उसके पास अक़्ल है, मगर अक़्ल की लाचारी की हालत यह है कि उसे ख़ुद अपनी ख़बर नहीं। आज तक इंसान यह मालूम न कर सका कि इंसान के ज़हन में विचार क्योंकर पैदा होते हैं और वह किस तरह सोचता है। ऐसे तुच्छ गुणों (insignificant qualities) के साथ वह न तो अपने बारे में किसी सही नतीजे तक पहुँच सकता है और न ही कायनात को समझ सकता है।

इस पहेली को ईश्वर की किताब हल करती है। इस आसमान के नीचे आज क़ुरआन ही एक ऐसी किताब है, जो पूरे विश्वास के साथ सारी हक़ीक़तों के बारे में हमें पक्का ज्ञान देती है। जिन लोगों ने ईश्वर की किताब के बिना कायनात को समझने की कोशिश की है, उनकी मिसाल बिल्कुल ऐसी है, जैसे अंधों के पास एक हाथी खड़ा कर दिया जाए और फिर उनसे पूछा जाए कि हाथी कैसा होता है तो जिसके हाथ में इसकी दुम आएगी, वह कहेगा कि हाथी ऐसा होता है, जैसे साँप। कोई कान टटोलकर कहेगा कि हाथी ऐसा होता है, जैसे हवा झलने वाला पंखा । कोई पीठ पर हाथ फेरेगा और कहेगा कि हाथी ऐसा होता है, जैसे कोई तख़्त। कोई पाँव छूकर कहेगा कि हाथी ऐसा होता है, जैसे खंभा। सभी नास्तिक दार्शनिकों और विचारकों (atheist philosophers and thinkers) का यही हाल है। उन्होंने कायनात के अंदर हक़ीक़त को टटोलने की कोशिश की, लेकिन ज्ञान के प्रकाश से चूँकि वे वंचित थे, इसलिए उनकी सारी कोशिशों का नतीजा इसके सिवा और कुछ न निकला, जैसे कोई आदमी अँधेरे में भटक रहा हो और अंदाज़े के ज़रिये उल्टे-सीधे फ़ैसले करता रहे।

दुनिया में ऐसे लोग गुज़रे हैं, जो ज़िंदगी भर सत्य की खोज में रहे, मगर हक़ीक़त को न पाकर आत्महत्या कर ली और बहुत से लोग ऐसे भी हुए हैं, जिन्हें हक़ीक़त तो नहीं मिली , मगर अंदाज़े से उन्होंने एक फ़लसफ़ा गढ़ लिया। मेरे नज़दीक इन दो तरह के इंसानों में केवल इतना ही अंतर है कि एक ने अपने अंदाज़े को अक़्ल समझा और उसे क्रमबद्ध करके दुनिया के सामने पेश कर दिया

और दूसरे को अपने अंदाज़े पर संतुष्टि नहीं हुई और उसने मजबूर होकर इस हैरान करने वाली दुनिया से निकल जाने की कोशिश की और ख़ुद अपना गला घोंट डाला। सच्चे ज्ञान से यह भी वंचित थे और वह भी। ज़िंदगी के राज़ का जो असल राज़दार है, उसकी मदद के बिना कोई आदमी इस राज़ को नहीं समझ सकता। निश्चय ही इंसान को सोचने-समझने की योग्यता दी गई है, मगर इसकी मिसाल बिल्कुल ऐसी है, जैसे आँख। इंसान निश्चित ही इससे देखने की योग्यता रखता है, मगर क्या बाहरी रोशनी के बिना कोई आँख देख सकती है? रात के समय एक अँधेरे कमरे में आँख रहते हुए भी आपको कुछ सुझाई नहीं देता, मगर जब बिजली का बल्ब रोशन कर दिया जाए तो हर चीज़ साफ़ नज़र आने लगती है। इसी तरह ईश्वरीय संदेश अक़्ल की रोशनी है और इस रोशनी के बिना हम चीज़ों की हक़ीक़त को नहीं पा सकते।

एक आदमी से एक बार मेरी बात हुई। उन्होंने कहा, "यह बात कही जाती है कि ज्ञान इसका नाम नहीं है कि आदमी बहुत-सी किताबें पढ़े हुए हो और स्कूलों व कॉलेजों की डिग्री अपने पास रखता हो। सबसे बड़ा ज्ञान ईमान* है। क़ुरआन में भी इसकी चर्चा है कि ईश्वर से डरने वाले लोग ही हक़ीक़त में ज्ञानी हैं, मगर यह बात अभी तक मेरी समझ में नहीं आई।" मैंने कहा कि कार्ल मार्क्स, जिसे अर्थशास्त्र का पैग़ंबर कहा जाता है, उसे ही ले लीजिए। उसे वह सही ज्ञान प्राप्त नहीं था, जो ईश्वर की कृपा से आज आपको प्राप्त है। उसके सामने दुनिया की यह परिस्थिति आई कि कुछ लोगों ने जागीरदार या कारख़ानेदार बनकर दौलत के एक बड़े हिस्से पर क़ब्ज़ा कर लिया है और ज़्यादातर लोग बहुत ही ग़रीबी की हालत में ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं। उसने कहा कि इस ऊँच-नीच की असल जड़ मौजूदा मालिकाना व्यवस्था है, जिसमें चीज़ें इस्तेमाल के लिए नहीं बनतीं, बल्कि इसलिए तैयार की जाती हैं कि दूसरे इंसानों के हाथ बेचकर इनसे फ़ायदा हासिल किया जाए। इसके कारण ही लोगों को मौक़ा मिलता है कि अपनी संपत्ति बढ़ाने और ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा कमाने के लिए दूसरों को लूटें। इसके इलाज के लिए उसने यह विचार किया कि मालिकाना अधिकारों को सिरे से ख़त्म करके दौलत हासिल करने के माध्यमों को जनता के साझा क़ब्ज़े में दे दिया जाए और हुकूमत के ज़िम्मे यह काम सौंप दिया जाए कि वह सबके फ़ायदे के अनुसार

* ईश्वर द्वारा उसके पैग़ंबर के ज़रिये भेजे गए संदेश पर दृढ़ विश्वास।

संपत्ति के उत्पादन और विभाजन की सामाजिक व्यवस्था करे।

सवाल यह हुआ कि ऐसी हालत में सभी चीज़ों पर हुकूमत का क़ब्ज़ा हो जाएगा और जब आज कुछ लोग पूँजीपति बनने के माध्यम अपने हाथ में पाकर फ़ायदा हासिल करने में व्यस्त हो गए हैं तो दूसरे कुछ लोग, जिन्हें यह ख़ज़ाना सौंपा जाएगा तो क्या वे भी ऐसा नहीं करेंगे, जबकि दौलत हासिल करने के माध्यमों के साथ उन नए प्रबंधकों को फ़ौज और क़ानून बनाने की शक्तियाँ भी प्राप्त होंगी। कार्ल मार्क्स ने जवाब दिया, "लोभ और लूट हक़ीक़त में पूँजीपति व्यवस्था की पैदावार है। साम्यवादी समाज में इस तरह की चीज़ें ख़त्म हो जाएँगी।" मैंने उस आदमी से पूछा, "अब आप बताइए, क्या मार्क्स का यह विचार सही था?" उन्होंने कहा, "बिल्कुल नहीं। आख़िरत* की पूछताछ के सिवा दुनिया में कोई चीज़ ऐसी नहीं है, जो आदमी को ज़ुल्म और स्वार्थ से रोक सके।" मैंने कहा, "फिर ज्ञानी कौन हुआ? आप या कार्ल मार्क्स? जिसके मनगढ़ंत सिद्धांतों का परिणाम यह है कि इंसानियत पहले से भी अधिक ज़ुल्मो-सितम का शिकार हो रही है, क्योंकि ज़ार (Tsar) और पूँजीपति पहले दो अलग-अलग वजूद थे और अब साम्यवादी व्यवस्था में जो ज़ार हैं, वही पूँजीपति भी हैं।"

लगभग यही हालत उन सभी दार्शनिकों की है, जिन्होंने ईश्वर के बिना कायनात की पहेली को हल करने की कोशिश की है। उनके विचारों को देखकर हैरानी होती है कि इतने बड़े-बड़े लोग कैसी बच्चों-सी बातें करते हैं; जैसे अंधों की भीड़ में एक हाथी है, जिसे कोई साँप बताता है, कोई पंखा, कोई तख़्त कहता है और कोई खंभा। अगर ईश्वर की किताब की रोशनी में ज़िंदगी और कायनात का अध्ययन किया जाए तो हर चीज़ बिल्कुल साफ़-साफ़ अपने असली रूप में नज़र आने लगती है और एक साधारण आदमी को भी चीज़ों की हक़ीक़त समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। वह पहली नज़र में ही असल हक़ीक़त तक पहुँच जाता है; मगर जो इस ज्ञान से वंचित है, उसके लिए यह दुनिया एक भूल-भुलैया है, जिसमें वह भटक रहा है।

मानवीय विद्याएँ हमें बहुत कुछ देती हैं, मगर ज़्यादा-से-ज़्यादा इनके द्वारा जो कुछ मालूम होता है, वह केवल यह है कि 'कायनात क्या है', लेकिन इसके बारे में वह अब तक एक अक्षर न बता सकीं कि 'जो कुछ है, वह क्यों है',

---

* परलोक; मौत के बाद आने वाली दुनिया।

जैसे— कुछ गैसों, कुछ धातुओं और कुछ लवणों (salts) के मिलने से एक चलता-फिरता जागरूक इंसान वजूद में आता है, मिट्टी में बीज डाल देने से हरे-भरे फलदार पेड़ और पौधे निकलते हैं।

एटम में केवल इलेक्ट्रॉन की संख्या बदल जाने से असंख्य तत्त्व बन जाते हैं। दो गैसों के मिलने से पानी जैसी क़ीमती चीज़ तैयार हो जाती है। पानी के अणुओं की गति (molecular motion) से भाप की ताक़त पैदा होती है, जिससे विशालकाय इंजन गतिविधि करते हैं। एटम के छोटे-छोटे इलेक्ट्रॉन, जो किसी सूक्ष्मदर्शी (microscope) द्वारा नहीं देखे जा सकते, इनके टूटने (fission) से वह बहुत ज़्यादा ताक़त पैदा होती है, जो पहाड़ों को तोड़ डालती है। 'यह सब होता है' बस हम इन चीज़ों के बारे में इतना ही जानते हैं, मगर 'यह सब क्यों हो रहा है' इनके बारे में मानवीय विद्याएँ हमारा कोई मार्गदर्शन नहीं करतीं।

"दुनिया के सभी समंदरों के किनारे रेत के जितने कण हैं, शायद इतनी ही आसमान में सितारों की संख्या है। इनमें कुछ ऐसे सितारे हैं, जो पृथ्वी से थोड़े बड़े हैं, मगर ज़्यादातर सितारे इतने बड़े हैं कि इनके अंदर लाखों पृथ्वियाँ रखी जा सकती हैं और फिर भी जगह बची रहेगी और कुछ सितारे तो इतने बड़े हैं कि अरबों पृथ्वियाँ इनके अंदर समा सकती हैं। यह कायनात इतनी बड़ी है कि रोशनी की तरह एक बहुत ही तेज़ उड़ने वाला हवाई जहाज़, जिसकी रफ़्तार एक लाख छियासी हज़ार मील प्रति सेकंड हो, वह कायनात के चारों ओर घूमे तो उस हवाई जहाज़ को कायनात का पूरा चक्कर लगाने में अरबों वर्ष लगेंगे। फिर यह कायनात ठहरी हुई नहीं है, बल्कि हर पल अपने चारों ओर फैल रही है। इसके फैलने की रफ़्तार इतनी तेज़ है कि हर 130 करोड़ वर्ष बाद कायनात के सारे फ़ासले दो गुना हो जाते हैं। इस तरह यह हमारा काल्पनिक प्रकार का असाधारण रफ़्तार से उड़ने वाला हवाई जहाज़ कायनात का चक्कर कभी पूरा नहीं कर सकता। वह हमेशा इस बढ़ती हुई कायनात के रास्ते में ही रहेगा।" यह कायनात की विशालता के बारे में आइंस्टीन का दृष्टिकोण है, मगर यह केवल एक गणितज्ञ (mathematician) का अंदाज़ा है। हक़ीक़त यह है कि अभी तक इंसान कायनात की विशालता को समझ नहीं सका है।

मानवीय अध्ययन हमें हैरान करने वाली कायनात के सामने लाकर छोड़ देता है। वह हमें नहीं बताता कि उसकी हक़ीक़त क्या है, कौन इन घटनाओं को अस्तित्व में ला रहा है और वह कौन-सा हाथ है, जो विशाल अंतरिक्ष में बहुत

ही बड़े पिंडों (celestial bodies) को सँभाले हुए है? यह सभी बातें हमें क़ुरआन से मिलती हैं। क़ुरआन हमें बताता है कि चीज़ें क्योंकर वजूद में आई हैं, वह किस तरह स्थापित हैं और भविष्य में इनका अंजाम क्या होगा। वह कायनात के रचयिता और मालिक का हमसे परिचय कराता है और उसकी गतिविधियों को हमारे सामने खोलकर रख देता है।

क़ुरआन ईश्वरीय सत्ता का शाब्दिक अवलोकन है। एक छुपा हुआ ताक़तवर इरादा— जो इस कायनात में हर तरफ़ काम कर रहा है— क़ुरआन के पन्नों में वह हमें बिल्कुल महसूस तौर पर नज़र आता है। वह अलौकिक वास्तविकताएँ (supernatural realities), जिनको आदमी आँखों से नहीं देख सकता और न ही हाथों से छूकर मालूम कर सकता, यह किताब उनके बारे में हमें पक्की ख़बर देती है और सिर्फ़ ख़बर नहीं देती, बल्कि शब्दों के द्वारा इतने आश्चर्यजनक तरीक़े से इनका चित्रण करती है कि अप्रत्यक्ष (indirect) बिल्कुल प्रत्यक्ष (direct) मालूम होने लगता है। यह किताब हमें केवल यही नहीं बताती कि 'ईश्वर' है, बल्कि वह आश्चर्यजनक रूप से एक कायनात के दूरदर्शी की जीवित कल्पना सामने लाकर रख देती है। वह क़यामत के बारे में केवल सूचना ही नहीं देती, बल्कि उस बहुत ही ज़्यादा डरावने दिन की इतनी स्पष्टता से व्याख्या करती है कि आने वाला दिन बिल्कुल निगाहों के सामने घूमने लगता है। मशहूर है कि यूनान में एक चित्रकार ने अंगूर के गुच्छे का चित्र बनाया। यह चित्र इतना ज़बरदस्त था कि चिड़ियाँ इस पर चोंच मारती थीं। यह एक इंसान की कला थी। फिर क़ुरआन तो कायनात के रचयिता की कला है। उसकी कला की कौशलता का अंदाज़ा कौन कर सकता है।

क़ुरआन का पहला वाक्य है 'अलहम्दु लिल्लाही रब्बिल आलमीन।' यह वाक्य बहुत ही अर्थपूर्ण है। इसका मतलब है— शुक्र है उस ईश्वर का, जो सारी दुनिया वालों का मालिक और पालनहार है। मालिक और पालनहार उसे कहते हैं, जो अपने मातहतों पर गहरी नज़र रखे और उनकी सभी ज़रूरतों का सामान उपलब्ध कराए। इंसान की ज़रूरतों में सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि उसे बताया जाए कि वह क्या है? कहाँ से आया है और कहाँ जाएगा? उसका फ़ायदा किस चीज़ में है और नुक़सान किस चीज़ में? आदमी को अगर किसी ऐसे आकाशीय पिंड में ले जाकर डाल दिया जाए, जहाँ हवा और पानी न हो तो यह उसके लिए इतना बड़ा हादसा न होगा, जितना बड़ा हादसा यह है कि वह दुनिया में अपने

आपको इस हाल में पाए कि अपने और माहौल के बारे में वह सही जानकारी से अनजान है।

ईश्वर अपने बंदों पर उससे ज़्यादा कृपाशील है, जितना बाप अपने बेटे के लिए होता है। यह नामुमकिन था कि वह अपने बंदों की इस मजबूरी को देखता और उसे पूरा न करता। इसलिए उसने वह्य* के ज़रिये वह ज़रूरी ज्ञान भेजा, जिसकी इंसान को अपनी पहचान हासिल करने के लिए ज़रूरत थी और एक इंसान की भाषा जिसे सहन कर सकती थी। यह रचयिता का अपने बंदों पर सबसे बड़ा अहसान है, जो बंदा अपनी हैसियत को पहचानता हो और जिसे यह अहसास हो कि वह सत्य का ज्ञान जानने के लिए अपने रचयिता का कितना मोहताज है, उसका दिल ईश्वर की इस कृपा को देखकर शुक्र और तारीफ़ की भावना से भर जाएगा और इस किताब को पाकर वह अचानक कह उठेगा— "अलहम्दु लिल्लाही रब्बिल आलमीन।" यह बंदे की ज़ुबान से अदा होने वाले बोल हैं, जो ईश्वर की ओर से भेजे गए हैं। बंदा यह जानने के लिए भी कि वह किस तरह अपने मालिक की इबादत करे, अपने मालिक के मार्गदर्शन का मोहताज है, आदमी के अंदर स्वाभाविक रूप से इबादत की भावनाएँ उमड़ती हैं, लेकिन वह नहीं जानता कि वह इन भावनाओं को किस तरह ज़ाहिर करे— क़ुरआन उन्हें निर्धारित करता है और उनके लिए शब्द उपलब्ध कराता है। क़ुरआन की दुआएँ इस सिलसिले में बहुत ही बढ़िया उपहार हैं।

क़ुरआन प्रचलित अर्थों (prevalent sense) में कोई किताब नहीं, ज़्यादा सही अर्थों में वह इस्लामी निमंत्रण की आख़िरी जद्दोजहद की घटना है। ईश्वर प्राचीन समय से इंसानों के लिए सत्य का ज्ञान अपने ख़ास बंदों के ज़रिये भेजता रहा है। सातवीं शताब्दी ई० में ईश्वर का इरादा यह हुआ कि ज़मीन पर बसने वालों के लिए अंतिम रूप से सत्य का ज्ञान दे दे और इस ज्ञान के आधार पर एक विधिवत (duly) समाज का निर्माण भी कर दे, ताकि वह क़यामत तक सारी इंसानी नस्ल के लिए प्रकाश और आदर्श का काम दे सके।

इसी उद्देश्य के तहत ईश्वर ने अपने आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद को अरब में भेजा और आपके ज़िम्मे यह काम सौंपा कि आप अरब में इस सत्य के संदेश का निमंत्रण दे और फिर जो लोग आपके इस संदेश से प्रभावित हों, उनके

* ईश्वर का फ़रिश्ते जिब्राईल द्वारा पैग़ंबर को भेजा गया संदेश।

ज़िम्मे यह काम सौंपा गया कि वे सारी दुनिया में इस संदेश को फैलाएँ। पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद ने इस सत्य-ज्ञान को फैलाने और इसके आधार पर एक इंसानी समाज स्थापित करने का जो आंदोलन अरब में चलाया, इसका मार्गदर्शन करने वाला ख़ुद ईश्वर था। उसने सीधे तौर पर अपने कथन के द्वारा पैग़ंबर पर वह्य भेजी कि उसे किन चीज़ों का प्रचार करना है। उसने वह सभी तर्क उपलब्ध कराए, जो इस संदेश को प्रभावी बनाने के लिए ज़रूरी थे। जब विरोधियों की ओर से कोई ऐतराज़ हुआ तो उसने जवाब दिया। जब इस निमंत्रण को स्वीकार करने वालों में किसी प्रकार की कमज़ोरी पैदा हुई तो उसने तुरंत उनका सुधार किया।

उसने युद्ध व संधि के आदेश दिए और शिक्षा-दीक्षा के नियम बताए। उसने कठिनाई के समय अपने मानने वालों को तसल्ली दी और जीत के समय वह क़ानूनी आदेश दिए, जिनके आधार पर नए समाज का निर्माण करना था। मतलब यह कि यह आंदोलन, जिसकी शुरुआत और अंत के बीच 23 वर्ष की दूरी है, उसके सभी पड़ावों में ईश्वर एक महान मार्गदर्शक की हैसियत से मार्गदर्शन करने के साथ-साथ आदेश भेजता रहा। यह मार्गदर्शन और आदेश बाद में ख़ुद मार्गदर्शक की इच्छानुसार एक विशेष क्रम में जमा कर दिए गए और इसी संग्रह का नाम 'क़ुरआन' है।

वह ईश्वरीय निमंत्रण का काम, जो आख़िरी पैग़ंबर के द्वारा अरब में शुरू हुआ और जिसका मार्गदर्शन ख़ुद ईश्वर ने किया, क़ुरआन इसका विश्वसनीय रिकॉर्ड है। यह उन ईश्वरीय मार्गदर्शनों का संग्रह है, जो इस आंदोलन के मार्गदर्शन के लिए लगभग एक चौथाई शताब्दी के बीच अलग-अलग समय में भेजे गए थे, मगर यह क़ुरआन केवल इतिहास नहीं है। यह ईश्वर की स्थायी आज्ञा है, जो इतिहास के साँचे में ढालकर हमें दी गई है। वह इतिहास है, इसलिए कि यह एक व्यावहारिक नमूना (practical model) है और व्यावहारिक नसीहत (practical advice) के लिए उपलब्ध कराया गया है। वह स्थायी आज्ञा है, इसलिए कि कायनात के मालिक के फ़ैसले के अनुसार इसी के आधार पर हर दौर के इंसान की भलाई और बुराई का फ़ैसला होने वाला है, लेकिन इस विशेष क्रम के बावजूद क़ुरआन इस तरह के संग्रहों से बिल्कुल अलग है, जैसे आजकल राजनीतिक नेताओं के भाषणों के संग्रह छपते हैं। यह एक अदृश्य ज्ञानी की एक कुशल योजनाबंदी है। क़ुरआन के विभिन्न अंश एक लंबे दौर में अलग-अलग भेजे गए, लेकिन यह विभिन्न टुकड़े केवल संयोग के रूप में अस्तित्व में नहीं

आए थे, बल्कि वह एक संकलित योजना के अंश थे, जो व्यावहारिक ज़रूरत के तहत अलग-अलग समय में विभिन्न क्रम के साथ अवतरित हुए। योजना के पूरा होने पर जब इन्हें पूरा करके जोड़ दिया गया तो अब वह एक अनोखा एकीकरण (unique integration) बन गए हैं।

उदाहरण के लिए— यूँ समझिए कि भारत के लिए एक नव-निर्मित (newly built) कारख़ाने का सामान समुद्र के पार किसी देश में तैयार किया जाता है, स्पष्ट है कि यह सामान वहाँ के विभिन्न कारख़ानों में अलग-अलग बनेगा और सारा सामान विभिन्न जहाज़ों में भरकर भारत भेज दिया जाएगा। स्पष्ट रूप से देखिए तो तैयारी के पूरे चरण में यह कारख़ाना विविध और अपूर्ण (miscellaneous and incomplete) चीज़ों का ढेर मालूम होता है, मगर यह सामान जो अलग-अलग जहाज़ों में लदकर आया है, जब यहाँ उसके सारे हिस्सों को जोड़ दिया जाता है तो एक पूरा कारख़ाना हमारी नज़रों के सामने खड़ा हो जाता है। लगभग यही मामला क़ुरआन का है। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है। यह स्थायी और संपूर्ण जीवन-विधि है, इसलिए वह एक इकाई है। यह विरोधी वातावरण का मुक़ाबला करके उसे अनुकूल बनाने का संदेश है। इसलिए हालात और ज़रूरतों के तहत थोड़ा-थोड़ा करके अवतरित किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह विविध आदेशों का संग्रह है, मगर महान ईश्वर की योजनाबंदी ने इसे एक जगह इकट्ठा करके संग्रहीत कर दिया है।

आज दुनिया में अरबों- खरबों की संख्या में पुस्तकें छपकर प्रकाशित हो चुकी हैं। एक-एक कला और हर कला के विभिन्न विभागों पर इतनी ज़्यादा संख्या में किताबें लिखी गई हैं कि आदमी सारी उम्र उनका अध्ययन करता रहे, मगर क़ुरआन एक ऐसी किताब है कि दुनिया में सारी किताबों के अध्ययन के बावजूद भी आदमी को क़ुरआन के मार्गदर्शन की ज़रूरत रहेगी। हक़ीक़त यह है कि दूसरी किताबों के अध्ययन से कोई आदमी सही मायनों में उसी समय फ़ायदा उठा सकता है, जब उसे क़ुरआन के ज़रिये वह गहरी सोंच (insight) हासिल हो चुकी हो, जो हर मामले में फ़ैसले तक पहुँचने के लिए ज़रूरी है। समुद्री जहाज़ों को विशाल समुद्र में एक कंपास की ज़रूरत होती है। इसी तरह ज़िंदगी की उलझी हुई समस्याओं में सही राय पर पहुँचने के लिए ईश्वरीय मार्गदर्शन की ज़रूरत है। जिसे इस रोशनी का सौभाग्य प्राप्त होगा, वह गहराई से अपनी ज़िंदगी की नाव पार उतार लेगा और जो इस रोशनी से वंचित होगा, वह ज़िंदगी की समस्याओं

में उलझकर रह जाएगा और किसी सही नतीजे तक न पहुँच सकेगा। क़ुरआन प्रकृति के इस ख़ालीपन को भरता है, जिसने इतिहास के हर दौर में इंसान को बेचैन रखा है।

रूसो ने कहा था—

> "इंसान आज़ाद पैदा हुआ है, पर मैं हर तरफ़ उसे ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ पाता हूँ।"

मैं कहूँगा कि इंसान प्राकृतिक रूप से बंदा पैदा हुआ है, मगर वह बनावटी तौर पर मालिक बनना चाहता है। इंसान देखने में एक पूर्ण अस्तित्व मालूम होता है, मगर हक़ीक़त में वह मोहताज है। जिस तरह अपने अस्तित्व को बरक़रार रखने के लिए उसे हवा, पानी और दूसरी ज़मीनी पैदावार की ज़रूरत है, उसी तरह उसे ज़हनी ज़िंदगी (intellectual life) के लिए भी एक बाहरी सहारे की ज़रूरत है। इंसान स्वाभाविक रूप से एक ऐसा सहारा चाहता है, जिस पर वह मुश्किल हालात में भरोसा कर सके। उसे एक ऐसी क़रीबी हस्ती की ज़रूरत है, जिसके आगे वह अपना सिर झुका दे। जब वह तकलीफ़ में हो तो किसी ज़रूरत पूरी करने वाले के सामने हाथ उठा सके। जब उसे ख़ुशी हो तो किसी अहसान करने वाले के सामने शुक्र का सजदा* कर सके। जिस तरह समुद्र में डूबने वाला एक आदमी किश्ती का सहारा चाहता है, उसी तरह इस बहुत बड़ी कायनात में इंसान को एक मज़बूत रस्सी की ज़रूरत है जिसे वह थाम सके। कोई बड़ी-से-बड़ी हस्ती इस कमी से ख़ाली नहीं हो सकती। अगर यह ख़ालीपन एक ईश्वर के अस्तित्व के द्वारा पूरा किया जाए तो यह 'तौहीद' यानी एकेश्वरवाद है और अगर इसे छोड़कर किसी दूसरी हस्ती का सहारा खोजा जाए तो यह अनेकेश्वरवाद है।

इतिहास के हर दौर में इंसान इन दो में से किसी-न-किसी सहारे को अपनाने के लिए मजबूर रहा है। जो लोग एकेश्वरवाद को मानने वाले हैं, उनका सहारा पुराने ज़माने से एक ईश्वर था और अब भी केवल एक ईश्वर ही है, मगर अनेकेश्वरवाद के मानने वालों के केंद्र बदलते रहे हैं। पहले ज़माने का इंसान और मौजूदा ज़माने में भी बहुत से लोग अंतरिक्ष में चमकते सितारों से लेकर पेड़ों और पत्थर तक असंख्य चीज़ों की पूजा करते रहे हैं और अब मौजूदा ज़माने में क़ौम, वतन और भौतिक उन्नति व राजनीतिक श्रेष्ठता की भावना

---

* सम्मान और समर्पण के भाव से माथा टेकना।

ने इसकी जगह ले ली है। इंसान को अब भी एक प्रेम के केंद्र की ज़रूरत है। वह अब भी अपनी दौड़-धूप के लिए किसी महान हस्ती का सहारा चाहता है। उसे अब भी इसकी तड़प है कि किसी की याद से दिल को गर्माए और जीवन की उर्जा प्राप्त करे।

यह नई-नई मूर्तियाँ हक़ीक़त में इसी ख़ालीपन को भरने के लिए बनाई गई हैं; मगर जिस तरह पत्थर की मूर्ति हक़ीक़त में कोई सहारा न थी, जो इंसान के किसी काम आ सकती, उसी तरह मौजूदा ज़माने की यह चमकदार मूर्तियाँ भी बहुत कमज़ोर हैं, जो किसी क़ौम को वास्तविक शक्ति नहीं दे सकतीं। जर्मनी ने क़ौम को अपनी मूर्ति (सहारा) बनाया, मगर यह मूर्ति उसके काम न आ सकी और दूसरे विश्वयुद्ध ने उसे बरबाद कर दिया। इटली और जापान वतन की मूर्ति को लेकर उठे, मगर यह मूर्ति ख़ुद उनके वतन को उनके लिए क़ब्रिस्तान बनने से न रोक सकी। ब्रिटेन और फ्रांस ने भौतिक साधनों को अपनी मूर्ति बनाया, मगर वह उनके काम न आई और जिस साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता था, उसका सूरज डूबकर रहा।

क़ुरआन हमें बताता है कि इस कायनात की ताक़त का असल ख़ज़ाना कहाँ है। वह हमारे हाथ में उस मज़बूत रस्सी का सिरा देता है, जिसे टूटना नहीं है और जिसके सिवा हक़ीक़त में इस दुनिया में कोई सहारा नहीं है। क़ुरआन हमें बताता है कि कायनात में सच्चा सहारा सिर्फ़ एक ईश्वर का है। इसी के ज़रिये दिलों को सुकून मिलता है। इसी के ज़रिये ज़िंदगी जीने के लिए ऊर्जा हासिल होती है। ईश्वर से संबंध ही वह सबसे मज़बूत रस्सी है, जो अलग-अलग इंसानों को आपस में जोड़ती है, वही नाज़ुक मौक़ों पर हमारा सहायक और मुश्किल हालात में हमारा मददगार है। उसी के हाथ में सारी ताक़त है, इज़्ज़त उस क़ौम के लिए है, जो उसका सहारा पकड़े और जो उसे छोड़ दे, उसके लिए अपमान के सिवा और कुछ नहीं है। यह ज्ञान दरअसल सारे ख़ज़ानों की चाबी है। जिसे यह मिला, उसे सब कुछ मिल गया और जो इससे वंचित रहा, वह हर चीज़ से वंचित रहा।

हम उन वैज्ञानिकों को बड़ी अहमियत देते हैं, जिन्होंने बिजली और भाप की शक्तियों का पता लगाया; जिससे इंसानी सभ्यता को तरक़्क़ी के मौक़े मिले, मगर यह किताब जिस हक़ीक़त का राज़ खोलती है, उसकी महानता का अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता। यह केवल मशीनों का ज्ञान नहीं, बल्कि उस इंसान का ज्ञान है, जिसके लिए सारी मशीनें बनी हैं। इसके ज़रिये हम इंसान को समझते हैं,

इसके ज़रिये इंसान अपनी ज़िंदगी को कामयाब बनाने का राज़ मालूम करता है और यही इतिहास का वह अटल फ़ैसला है, जिससे क़ौमों के बनने और बिगड़ने का फ़ैसला होता है।

क़ुरआन ईश्वर की आवाज़ है। हर बादशाह का एक क़ानून होता है। क़ुरआन ईश्वर का क़ानून है, जो सारे इंसानों का मालिक और सभी बादशाहों का बादशाह है। वह मार्गदर्शक है, जो इंसान का सही मार्गदर्शन करता है। वह क़ानून है, जिसमें इंसानियत के निर्माण और समाज की व्यवस्था के लिए एकदम सही बुनियादें हैं। वह अक़्लमंदी है, जिसमें अक़्लमंदी की सारी बातें भरी हुई हैं। वह शिफ़ा है, जिसमें इंसानियत की बीमारियों का इलाज है। वह फ़ुरक़ान है, जो सच और झूठ की सही-सही निशानदेही करता है। वह रोशनी है, जिससे इंसानियत के भटके हुए क़ाफ़िलों को रास्ता मिलता है। वह याद दिलाता है, जो इंसान के सोए हुए स्वभाव को जगाती है। वह नसीहत है, जो कायनात के मालिक की ओर से अपने बंदों के पास भेजी गई है। कहने का मतलब यह है कि इसमें वह सब कुछ है, जिसकी इंसान को ज़रूरत है। इसके सिवा कहीं और से आदमी को कुछ नहीं मिल सकता।

क़ुरआन ईश्वर की किताब है। वह एक माध्यम है, जिसके ज़रिये ईश्वर अपने बंदों से बात करता है। वह दुनिया में ईश्वर का अनुभूत प्रतिनिधि (identical representative) है। वह उन लोगों का सहारा है, जो ईश्वर की रस्सी को मज़बूती से पकड़ना चाहते हों। वह एक पैमाना है, जिससे इंसानों की ईश्वरभक्ति को मापा जा सकता है। अगर यह सवाल किया जाए कि कोई आदमी अपने बारे में किस तरह यह मालूम करे कि उसका ईश्वर से संपर्क स्थापित हुआ या नहीं तो इसका एक ही जवाब है, वह यह कि आदमी अपने अंदर टटोलकर देखे कि उसका क़ुरआन से कितना संबंध है। क़ुरआन से संबंध ही ईश्वर से संबंध होने का प्रदर्शन है। आदमी को क़ुरआन से जितना लगाव होगा, ईश्वर से भी उसका लगाव उतना ही होगा। अगर क़ुरआन उसकी सबसे ज़्यादा प्यारी किताब हो तो समझना चाहिए कि ईश्वर उसके नज़दीक सबसे ज़्यादा प्यारी हस्ती है और अगर उसकी सबसे ज़्यादा प्यारी किताब कोई और हो तो उसका सबसे ज़्यादा प्यारा भी वही आदमी होगा, जिसकी किताब उसने पसंद की है। ईश्वर उसका सबसे ज़्यादा प्यारा नहीं हो सकता। जिस तरह ईश्वर को हम क़ुरआन के सिवा कहीं और नहीं पा सकते, उसी तरह यह भी संभव नहीं है कि ईश्वर को पाने के बाद क़ुरआन के सिवा कोई और चीज़ हमारी सबसे ज़्यादा प्यारी बन सके।

क़ुरआन का अध्ययन करने की ज़रूरत केवल इसलिए नहीं है कि उसके ज़रिये आदमी अपने ईश्वर के आदेशों को मालूम करता है, बल्कि दुनिया की ज़िंदगी में ईश्वर के नज़दीक होने और बंदगी की राह पर इंसान को सीधा रखने का दारोमदार भी इसी पर है। क़ुरआन में आदमी अपने पालनहार से मुलाक़ात करता है, क़ुरआन में वह उसके वादों और ख़ुशख़बरियों को देखता है, अपने मालिक के बारे में इंसान के स्वाभाविक अहसास — जो उसके अंदर अनजाने में उमड़ते हैं— वह देखता है कि क़ुरआन में उनको चित्रित कर दिया गया है। जब इंसान को यह अहसास होता है कि अथाह कायनात के अंदर वह एक बेसहारा वजूद है तो क़ुरआन उसके लिए मंज़िल का निशान बनकर ज़ाहिर होता है। क़ुरआन आदमी के लिए वह विश्वास पैदा करता है, जिसके अनुसार आदमी दुनिया में अपना स्थान निर्धारित कर सके। क़ुरआन को केवल पढ़ लेना काफ़ी नहीं है, बल्कि उसके साथ मोहब्बत की ज़रूरत है। क़ुरआन से जब तक असाधारण लगाव न हो, यह सारे फ़ायदे हासिल नहीं हो सकते। यही वह चीज़ है, जिसे हदीस* में 'तआहुद' (ज़िम्मेदारी) के शब्द से स्पष्ट किया गया है।

क़ुरआन से यह दिलचस्पी और उसकी महानता का अहसास किसी और माध्यम से पैदा नहीं हो सकता। किसी व्याख्याकार या साहित्यकार की ज़ुबान से क़ुरआन के विषयों को सुनकर आदमी उस व्याख्याकार या साहित्यकार का श्रद्धावान तो हो सकता है, मगर इस तरह क़ुरआन से सच्चा लगाव पैदा होना संभव नहीं। क़ुरआन से लगाव केवल तभी पैदा हो सकता है, जबकि ख़ुद क़ुरआन को पढ़ा जाए और उसके अंदर जो कुछ है, उसको सीधे उसके अपने शब्दों के ज़रिये ज़हन में उतारा जाए। यह केवल काल्पनिक बात नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक महत्वपूर्ण मानसिक हक़ीक़त है। किसी चीज़ से आदमी उसी हैसियत से प्रभावित होता है, जिस हैसियत से वह इससे व्यक्तिगत रूप से परिचित हुआ हो। जैसे हम कह सकते हैं कि रूई और पत्थर का नरम और सख़्त होना एक बेकार बात है। हक़ीक़त में दोनों बिल्कुल एक हैं, क्योंकि अपने अंतिम विश्लेषण में दोनों एक ही तरह के वैद्युत कणों का समूह हैं, लेकिन यह एक

* हज़रत मुहम्मद के कथन, कर्म एवँ मार्गदर्शन।

विशुद्ध ज्ञानात्मक बात है। असली दुनिया में यह संभव नहीं है कि कोई आदमी रूई को नरम और पत्थर को सख़्त न समझे। प्रभाव कभी बाहरी ज्ञान का पाबंद नहीं होता, बल्कि वह केवल उस ज्ञान का पाबंद होता है, जो व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हुआ है।

इस मिसाल की रोशनी में मामले को समझना आसान हो जाता है। जब हम क़ुरआन को ख़ुद उसके शब्दों में समझे बिना किसी दूसरे आदमी के लेखों और उसकी व्याख्याओं के द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं तो प्राकृतिक रूप से जो स्थिति पैदा होती है, वह यह कि एक ओर क़ुरआन का मूलपाठ होता है, जिसका कोई मतलब हमारी समझ में नहीं आता या अगर समझ में आता है तो बहुत साधारण-सा। दूसरी ओर एक लेखक का लेख होता है, जो हमारे लिए समझ में आने योग्य भाषा में होने के कारण ख़ुद अपने को स्पष्ट करता है। ईश्वर का कथन समझ में नहीं आता, लेकिन लेखक का कथन ख़ूब समझ में आता है। ईश्वर के कथन में कोई बड़ी बामाएना दिखाई नहीं देती,

लेकिन लेखक का लेख बहुत ही बमाएना नज़र आता है। ईश्वर का कथन पढ़े तो वह दिल पर कोई प्रभाव नहीं डालता, लेकिन लेखक का लेख देखिए तो रग-रग में उतरता चला जाता है।

इस स्थिति का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि क़ुरआन के बजाय किसी लेखक की महानता उसके दिल पर छप जाती है। परंपरागत विश्वास के आधार पर वह अपनी ज़ुबान से यह तो नहीं कह सकता कि वह लेखक के लेखों को क़ुरआन पर अहमियत देता है, मगर उसका अंदरूनी अहसास इस तरह का हो जाता है मानो वास्तविक घटना यही है। वह अनजाने में ईश्वर के अलावा किसी और आदमी की इबादत करने लग जाता है।

यह एक बहुत बड़ा फ़ितना* है, जिसका ख़तरा हर उस आदमी से जुड़ा है, जो ईश्वर के संदेश को उसकी अपनी भाषा के बजाय किसी दूसरे की भाषा में सुनना चाहता हो, जो क़ुरआन का सीधे तौर पर अध्ययन करने के बजाय उससे

---

* फ़साद, उपद्रव, विद्रोह।

संबंधित दूसरे लोगों के लेखों को पढ़ लेना काफ़ी समझता हो, जो क़ुरआन को ख़ुद क़ुरआन से समझने के बजाय क़ुरआन को व्याख्याकारों और साहित्यकारों के लेखों से समझना चाहता हो। जिस तरह हम अपने पेट की भूख उसी समय बुझा सकते हैं, जबकि ख़ुद खाएँ और अपने अंदर हज़म करें, ठीक उसी तरह हमारा ईमान भी उसी समय सही और पूरा हो सकता है, जबकि हमने उसे उसके मूल स्रोत से ख़ुद हासिल किया हो। किसी दूसरे के माध्यम से हम उस तक ठीक-ठीक नहीं पहुँच सकते।

क़ुरआन के सिलसिले में एक अहम सवाल यह है कि क़ुरआन का अध्ययन किस प्रकार किया जाए कि वह अपने सही रूप में हमारे दिलो-दिमाग़ में उतर जाए और हमारी ज़िंदगी में वास्तविक रूप में शामिल हो सके। इसके लिए सबसे ज़रूरी चीज़ यह है कि क़ुरआन का अध्ययन ख़ुद क़ुरआन की रोशनी में किया जाए, न कि किसी और चीज़ की रोशनी में। यह अध्ययन अनिवार्य रूप से क़ुरआन को समझने के लिए होना चाहिए, न कि अपनी पहले से निर्धारित की हुई बात को उससे निकालने के लिए। जब भी कोई आदमी प्रभावित ज़हन के साथ क़ुरआन का अध्ययन करेगा, वह क़ुरआन को सही रूप से ग्रहण (acquire) नहीं कर सकता। ऐसा आदमी क़ुरआन के आईने में अपनी बात देखेगा, न कि क़ुरआन की बात को।

यह एक मनोवैज्ञानिक सच्चाई है कि इंसान के मन में किसी अध्ययन के नतीजे हमेशा उस कल्पना के अनुसार संग्रहीत होते हैं, जो पहले से उसके मन में मौजूद हों। इंसान के लिए यह असंभव है कि वह चीज़ों को केवल इस हैसियत से देखे, जैसा कि वह हक़ीक़त में हों। अक्सर हालात में वह मजबूर होता है कि चीज़ों को उस हैसियत से देखे, जैसा कि उसका ज़हन उन्हें देखना चाहता है। इस तरह जब कोई आदमी एक ख़ास सोच लेकर क़ुरआन का अध्ययन करता है तो व्यावहारिक रूप से यह होता है कि क़ुरआन की कुछ बातों को तो वह ले लेता है, जो उसके ज़हन के चौखटे में बैठ सकती हों और बाक़ी सारी बातों को छोड़ता चला जाता है।

इस तरह वह सारा क़ुरआन पढ़ लेता है और समझता है कि उसने क़ुरआन को पा लिया, मगर हक़ीक़त यह है कि वह क़ुरआन से बिल्कुल बेख़बर होता है। उसने जो चीज़ पाई है, वह वही है, जो उसके ज़हन में पहले से मौजूद थी और

जिसके समर्थन में संयोग से क़ुरआन की कुछ आयतें भी उसके हाथ आ गईं। ऐसे आदमी की मिसाल बिल्कुल उस शिक्षित नवयुवक की तरह है, जो अपनी बेकारी से परेशान हो और 'नौकरी की ज़रूरत' के विज्ञापनों को देखने के लिए अख़बार का अध्ययन करता हो। यह नवयुवक अपने उस अध्ययन के ज़रिये संभव है कि नौकरी का आवेदन-पत्र भेजने के लिए कुछ पते हासिल कर ले, मगर वह दुनिया की ख़बरों से बिल्कुल बेख़बर रहेगा और अख़बार देखने के असल मक़सद को हासिल न कर सकेगा।

प्रभावित ज़हन के साथ क़ुरआन का अध्ययन करने के अलग-अलग तरीक़े हैं, जिनमें सबसे ज़्यादा ख़तरनाक तरीक़ा वह है, जबकि आदमी समझ रहा हो कि वह इस्लाम की सेवा ही के लिए क़ुरआन का अध्ययन करने जा रहा है, हालाँकि हक़ीक़त में ऐसा न हो। मान लीजिए कि आप एक ऐसे आंदोलन से प्रभावित होते हैं, जो इस्लाम और मुसलमानों की सेवा के लिए उठा है, मगर वह सही इस्लामी आंदोलन नहीं है। (उदाहरण के लिए— ख़ाकसार आंदोलन) उसका अंदाज़ और उसकी रूह इस्लाम के अंदाज़ और उसकी रूह से अलग है। वह लोगों को इस्लाम के नाम पर बुलाता है और आपने निमंत्रण के स्पष्टीकरण के लिए इस्लामी शब्द और परिभाषाओं का इस्तेमाल करता है, मगर उसकी गतिविधि ठीक उस दिशा में नहीं है, जो की दरअसल इस्लाम की है।

इस उदाहरण में वास्तविक स्थिति यह है कि जिस आंदोलन ने आपको प्रभावित किया है, वह सही इस्लामी आंदोलन नहीं है; मगर आपके ज़हन में जो कल्पना बनी है, वह यह कि यही सबसे सही इस्लामी आंदोलन है और उसकी सेवा करना इस्लाम की सेवा करना है। इस आंदोलन ने आपकी वैचारिक शक्तियों को अपनी शैली के अनुसार मोड़ दिया है। अब एक ऐसा ज़हन लेकर जब आप क़ुरआन का अध्ययन शुरू करेंगे तो हक़ीक़त में आप यह समझेंगे कि आप क़ुरआन को हासिल करने जा रहे हैं; मगर जो हक़ीक़त है, वह यह कि आप क़ुरआन के शब्दों में अपनी बात की पुष्टि करना चाहते हैं।

इस तरह अध्ययन करने का लाज़िमी नतीजा यह होगा कि क़ुरआन की बहुत-सी चीज़ें आपको बेकार मालूम होंगी, क्योंकि वह आपके मानसिक साँचे के साथ समानता नहीं रखतीं और कुछ चीज़ें ऐसी होंगी, जो आपको पसंद आ जाएँगी, क्योंकि वह आपके मानसिक साँचे में फिट बैठ रही हैं। इस तरह आप क़ुरआन की कुछ बातों को ले लेंगे और उसकी बहुत-सी बातों को छोड़ देंगे।

आप अपने स्तर पर यह समझते रहेंगे कि आपने क़ुरआन को पा लिया है, लेकिन जो हक़ीक़त होगी, वह यह कि आप क़ुरआन से वंचित होंगे। आप इस्लाम के नाम पर ख़ुद इस्लाम को छोड़ देंगे। आप क़ुरआन के हवाले से बात करेंगे, मगर हक़ीक़त में आपकी बातचीत का क़ुरआन से कोई संबंध नहीं होगा। इस तरह अध्ययन के समय इंसान का मानसिक विचार जिस दर्जे में इस्लाम से हटा हुआ हो, उतनी ही उसके क़ुरआन के अध्ययन में चूक हो जाती है।

आप कहेंगे कि जब स्थिति यह है तो किसी के बारे में भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि उसका अध्ययन उसे सही नतीजों तक पहुँचा सकेगा, क्योंकि क़ुरआन के अध्ययन के बाद ही तो क़ुरआन के अनुसार किसी का ज़हन बन सकता है, फिर एक आदमी जो अभी क़ुरआन का अध्ययन करने जा रहा है और स्पष्ट है कि पहली बार हर आदमी का यही हाल होगा तो वह किस तरह क़ुरआन के अनुसार अपना ज़हन बना सकता है।

जवाब यह है कि मेरा मतलब यह नहीं है कि अध्ययन करने से पहले आदमी का ज़हन क़ुरआन के अनुसार बन चुका हो। स्पष्ट है कि यह बात असंभव है। मेरा मतलब केवल यह है कि उसके अंदर इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि क़ुरआन से उसे जो कुछ मिले, वह उसे बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकार कर ले। विद्वानों ने यह कहा है कि क़ुरआन से सही रूप से फ़ायदा उठाने के लिए ज़रूरी है कि आदमी इसके लिए ईश्वर से दुआ करे। इसका मतलब भी यही है कि आदमी के अंदर मार्गदर्शन को स्वीकार करने की तत्परता होनी चाहिए। दुआ का मतलब यह नहीं है कि कुछ विशेष शब्दों को अपनी ज़ुबान से बोलकर क़ुरआन पढ़ने की शुरुआत की जाए, बल्कि यह दुआ हक़ीक़त में दिल की उस तड़प की अभिव्यक्ति (expression) है कि बंदा मार्गदर्शन स्वीकार करने के लिए बेचैन है। वह सत्य की खोज में भटक रहा है। उसके अंदर सच्चाई की बेइंतिहा तलब है। वह पूरे वजूद के साथ सत्य का अभिलाषी बनकर ईश्वर से निवेदन कर रहा है कि वह उसे सही रास्ता दिखा दे। वह उसके अंदर सही विचारों को जगाए। वह क़ुरआन के अर्थों को उसके लिए खोल दे, ताकि वह उन्हें आत्मसात (assimilate) कर सके। यही हासिल करने की तड़प दरअसल वह चीज़ है, जो आदमी को सत्य की स्वीकृति तक ले जाती है और जिसने अपनी स्वाभाविक माँग पर ख़्वाहिशों के पर्दे डाल लिये हों, उसे कभी सत्य को स्वीकार करने का हौसला नहीं मिल सकता।

अब सवाल यह है कि क़ुरआन का अध्ययन करने के लिए हमें कौन-सी विद्याओं को जानने की ज़रूरत है। इस बातचीत को मैं दो भागों में विभाजित करना चाहूँगा। क़ुरआन को पढ़ने वाले लोग दो तरह के हो सकते हैं। एक वह, जो ज़्यादा अध्ययन करने के इच्छुक हों और दूसरे वह, जो अपने हालात के तहत उसे केवल साधारण तरीक़े से पढ़ना चाहते हों। दूसरी तरह के लोगों के लिए केवल कुरआन का अनुवाद ही काफ़ी है और पहली तरह के लोगों के लिए इन पाँच विद्याओं को सीखने की ज़रूरत है —

1. अरबी भाषा
2. हदीस और तफ़्सीर (व्याख्या)
3. विज्ञान यानी प्राकृतिक विज्ञान
4. उन क़ौमों का इतिहास, जिनमें ईश्वर के पैग़ंबर आए
5. प्राचीन आसमानी किताबें

1. क़ुरआन का गहरा अध्ययन करने के लिए अरबी भाषा की जानकारी होना अनिवार्य है। इसकी अहमियत किसी निजी प्रतिष्ठा के आधार पर नहीं है, बल्कि केवल इस दृष्टि से है कि इसके बिना क़ुरआन का गहरा अध्ययन प्रारंभ ही नहीं किया जा सकता। यह इस सफ़र की पहली सीढ़ी है, जिसे तय किए बिना ऊपर नहीं चढ़ा जा सकता। अरबी भाषा से परिचित होने की ज़रूरत का एक पहलू यह है कि इसके बिना हम आयते-इलाही (ईश्वरीय निशानी) से कोई गहरी बात नहीं समझ सकते। अरबी भाषा का ज्ञान होने की ज़रूरत इसलिए भी है कि क़ुरआन के शब्दों में जो बल और प्रभावशीलता भरी हुई है, उसे अपने ज़हन में स्थानांतरित करना उस समय तक संभव नहीं है, जब तक आदमी इसकी साहित्यिक संवेदनशीलताओं (sensitivities) से अच्छी तरह परिचित न हो।

हर लेख का एक मतलब होता है, जिसके लिए वह व्यवस्था की जाती है। यह मतलब इस तरह भी मालूम किया जा सकता है कि उन शब्दों का अनुवाद कर दिया जाए, जिनमें वह लेख संग्रहीत किया गया है या शब्दकोश (dictionary) में देखकर उसे हल कर लिया जाए; मगर इसी के साथ हर सफल लेख में एक प्रभावशीलता भी होती है, जो पढ़ने वाले को अपने अर्थों की ओर खींचती है। यह प्रभावशीलता मतलब से ज़्यादा उसके शब्दों और वर्णन में होती है। लेख को जिन शब्दों में संग्रहीत किया गया है, अगर आदमी उन शब्दों की बुद्धिमत्ता (wisdom) व वाक्य शक्ति (eloquence) को न जानता हो तो वह

उसके अनुवाद से इसका मतलब तो शायद समझ जाए, मगर इससे कोई प्रभाव स्वीकार नहीं कर सकता।

क़ुरआन के लेखों में असीम प्रवाह है, उसके अंदर आश्चर्यजनक रूप से वास्तविकताओं को शब्दों के रूप में साकार कर दिया गया है। क़ुरआन में कहीं विश्वास पैदा करने की कोशिश की गई है, कहीं ईश्वर के दंड से डराया गया है, कहीं अच्छे कर्मों पर उभारा गया है, कहीं अपने दावे के हक़ में इंसान की प्रकृति और कायनात की गवाहियों से साबित किया गया है, कहीं इंसान की सफलता व असफलता के दर्शन का वर्णन किया गया है; मगर यह सब कुछ केवल घटना के वर्णन के रूप में नहीं है, बल्कि ऐसी अर्थपूर्ण और प्रभावी शैली में है कि हर जगह आदमी पर वही अवस्था छा जाती है, जिसका दरअसल वहाँ उद्देश्य है। क़ुरआन की वर्णन-शैली ऐसे मंत्रमुग्ध करने वाली है कि आदमी उसे केवल पढ़ता ही नहीं, बल्कि उसमें डूब जाता है। वह उसे केवल पढ़कर नहीं छोड़ देता, बल्कि वह मजबूर होता है कि उस पर ईमान लाए। क़ुरआन की यह शैली आधा क़ुरआन है।

यही कारण है कि क़ुरआन का अध्ययन करने वालों के लिए अरबी भाषा को सीखना बहुत ज़रूरी हो जाता है। यह एक ऐसी ज़रूरत है, जिसका वास्तविक अर्थों में कोई बदल नहीं।

साधारण अंदाज़ में क़ुरआन से फ़ायदा उठाने के लिए केवल अनुवाद काफ़ी है, मगर जो लोग ज़्यादा गहराई के साथ क़ुरआन का अध्ययन करना चाहते हों तो उनके लिए अरबी भाषा के अलावा और कुछ चीज़ों में जानकारी हासिल करना ज़रूरी है।

2. क़ुरआन का गहरा अध्ययन करने के लिए पहली मददगार चीज़ सुन्नत* और तफ़्सीर (commentary, व्याख्या) का ज्ञान है। इन दोनों को हमने एक ही सूची में इसलिए नहीं रखा है, क्योंकि दोनों का दर्जा एक ही है। हक़ीक़त यह है कि प्रामाणिक सुन्नत और क़ुरआन में कोई अंतर नहीं। इनमें से एक का अध्ययन करना जैसे दूसरे का अध्ययन करना है। इसके विपरीत तफ़्सीर किसी इंसान के क़ुरआन के अध्ययन के नतीजों का नाम है और इंसान का अध्ययन चाहे वह किसी भी आदमी का हो, उसमें ग़लतियों की संभावना है। इसलिए तफ़्सीर कभी

* तरीक़ा; पद्धति; वह काम जो हज़रत मुहम्मद ने किया हो।

क़ुरआन की जगह नहीं ले सकती और न उसे किसी भी हाल में सुन्नत का दर्जा दिया जा सकता है। इस अंतर के बावजूद इन दोनों को एक क्रम में रखने का कारण दरअसल वह ऐतिहासिक दशा है, जो क़ुरआन की तुलना में इसे प्राप्त है।

क़ुरआन जिस तरह संपूर्ण और सुरक्षित रूप में हम तक पहुँचा है, रिवायात* उसी तरह हम तक नहीं पहुँची हैं। सही रिवायात के साथ बहुत-सी ग़लत रिवायात भी शामिल हो गई हैं, इसीलिए विद्वानों ने क़ुरआन के मुक़ाबले में इसे पूर्ण ज्ञान के बजाय अनुमानित ज्ञान की हैसियत दी है। अगर हदीसों में अनुमान और संदेह का हस्तक्षेप न होता और उनका कोई ऐसा भंडार मौजूद होता, जिसे पूर्ण रूप से सुरक्षित घोषित किया जा सके तो हदीसों को भी इसी तरह असल का दर्जा दिया जाता, जैसा कि ख़ुद क़ुरआन का है। केवल हदीस ही नहीं, बल्कि वह सारा मूल स्रोत, जो क़ुरआन से संबंधित है, उन सबका यही मामला है, जैसे इतिहास और अतीत के सारे पैग़ंबरों की किताबें अगर अपने मूल रूप में सुरक्षित होतीं तो यह सब भी क़ुरआन की तरह असल घोषित होते और सब बिना किसी झगड़े के एक-दूसरे का समर्थन करते।

तफ़्सीर और रिवायात का भंडार क़ुरआन को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। प्रमाणित रिवायत की हैसियत यह है कि वह ख़ुद क़ुरआन लाने वाले की ज़ुबान से क़ुरआन का स्पष्टीकरण है; वह उन मामलों का विस्तार है, जिनको ईश्वर की किताब ने संक्षिप्त (brief) छोड़ दिया है, वह उन संकेतों को स्पष्ट करना है, जिनको क़ुरआन ने स्पष्ट नहीं किया है। वह उन उद्देश्यों का और अधिक स्पष्टीकरण है, जिन उद्देश्यों के लिए क़ुरआन को अवतरित किया गया था। इसलिए जो आदमी क़ुरआन को समझना चाहता हो तो उसके लिए अनिवार्य है कि वह हज़रत मुहम्मद के उपदेशों से फ़ायदा उठाए जिन पर क़ुरआन उतरा। इसके बिना वह क़ुरआन के अर्थों तक नहीं पहुँच सकता। इसी तरह व्याख्याओं का भंडार मुसलमानों के बेहतरीन दिमाग़ों की कोशिश का नतीजा है, जो शताब्दियों से क़ुरआन को समझने के लिए वे करते चले आ रहे हैं। यह इतिहास के दीर्घ कालों में क़ुरआन का अध्ययन करने वालों के वैचारिक परिणाम हैं, जिनको छोड़कर क़ुरआन का अध्ययन करना बिल्कुल ऐसा है,

---

* वह कड़ियाँ जिनके द्वारा पैग़ंबर की बातें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचीं।

जैसे कोई आदमी कहे कि पिछली सदियों में विज्ञान ने जो कुछ खोजें की हैं, उन सबको छोड़कर मैं दोबारा से कायनात पर विचार करूँगा। इसलिए ज़रूरी है कि हम क़ुरआन के अध्ययन के लिए तफ़्सीर और रिवायात के भंडारों से सहायता लें। उनको छोड़कर क़ुरआन का अध्ययन करना एक सिरफिरे आदमी का काम तो हो सकता है, मगर कोई गंभीर आदमी इस तरह की बेवकूफ़ी नहीं कर सकता।

3. क़ुरआन ने अपना निमंत्रण पेश करते हुए उसे दो चीज़ों से ख़ास तौर पर प्रमाणित किया है। एक ज़मीन और आसमान की उत्पत्ति और दूसरी चीज़ यह कि पिछली क़ौमों के हालात। क़ुरआन की यह सामान्य शैली है कि अपने दावे के पक्ष में प्रकृति के तर्क देकर और ऐतिहासिक घटनाओं से उसकी अधिक पुष्टि करे। पहली चीज़ इस घटना की गवाही है कि इस दुनिया का एक ईश्वर है, जिसकी मर्ज़ी मालूम करना हमारे लिए ज़रूरी है, इसे छोड़कर इंसान सफलता तक नहीं पहुँच सकता और दूसरी चीज़ इस बात का सबूत है कि ईश्वर हर ज़माने में कुछ इंसानों के ज़रिये अपना हुक्म भेजता रहा है। जिन लोगों ने इसे स्वीकार किया, वे सफल हुए और जिन्होंने इसे नहीं माना, वे तबाह कर दिए गए। कायनात वर्तमान भाषा में जिस हक़ीक़त की ओर इशारा करती है, पिछली क़ौमों के इतिहास की ज़ुबान इसी हक़ीक़त की पुष्टि करती है।

यह दोनों तर्क आज भी क़ुरआन को समझने और इस पर ईमान लाने के सिलसिले में बड़ी अहमियत रखते हैं। हालाँकि क़ुरआन विज्ञान की किताब नहीं है और न ही वह सामान्य अर्थों में कोई इतिहास की किताब है, मगर विज्ञान और इतिहास यही वह विशेष विद्याएँ हैं, जिन पर इनके तर्क का आधार स्थापित है। इसलिए क़ुरआन का कोई पढ़ने वाला इन विद्याओं से बेपरवाह रहकर क़ुरआन से कोई सही फ़ायदा नहीं उठा सकता।

पहली तरह के तर्क के सिलसिले में क़ुरआन ने इंसान के अंदर और बाहर की बहुत-सी निशानियों का ज़िक्र किया है और इन पर सोच-विचार करने की दावत दी है। इन तर्कों का क़ुरआन में इस तरह वर्णन नहीं है कि इनका विस्तृत विश्लेषण करके वैज्ञानिक शैली में इनके परिणाम इकट्ठे किए गए हों, बल्कि कायनात की निशानियों का ज़िक्र करके उनकी अलग-अलग दिशाओं या उद्देश्यों की ओर इशारा कर दिया गया है, जो सोच-विचार करने वाले को रास्ता दिखाती हैं मानो तर्कों का विवरण नहीं है, बल्कि तर्कों के शीर्षक हैं। इसलिए

उनसे पूरा फ़ायदा तभी हासिल किया जा सकता है, जबकि कायनात के बारे में और अधिक जानकारी को सामने रखकर उनका अध्ययन किया जाए। दूसरे शब्दों में, वह जानकारी और नतीजे आदमी के दिमाग़ में होने चाहिए, जिनसे उन तर्कों की स्पष्टता होती है और जो उसके संकेतों को विस्तृत बनाने वाले हैं, जैसे— क़ुरआन कहता है कि वही है जिसने ज़मीन को तुम्हारे लिए आज्ञाकारी बनाया, तो चलो-फिरो उसके कंधों पर।

इन शब्दों में जिस बड़ी हक़ीक़त की ओर इशारा किया गया है, उसका विवरण हमें क़ुरआन में नहीं मिलेगा, बल्कि बाहरी साहित्य में उसे तलाश करना पड़ेगा। बाहरी अध्ययन से हमें मालूम होगा कि ज़मीन को किस तरह अथाह अंतरिक्ष के अंदर ठहराकर हमारे लिए रहने के योग्य बनाया गया है और किस तरह अलग-अलग व्यवस्थाओं के द्वारा इसे जीवन के स्थायित्व (stable) और मानवीय संस्कृति के विकास के लिए अनुकूल बनाया गया है।

क़ुरआन कहता है कि इस कायनात का रचयिता और इसका प्रबंधक केवल एक ईश्वर है। उसका दावा है कि कायनात एक अललटप कारख़ाना नहीं है, बल्कि एक व्यवस्थित योजना की शुरुआत है, जिसका अपने अंजाम तक पहुँचना अनिवार्य है। कायनात की इस हक़ीक़त को स्पष्ट करने के बाद वह इंसान को उसे मानने का निमंत्रण देता है। वह उससे कहता है कि इस कायनात की कल्पना का अनिवार्य अर्थ यह है कि कायनात का अंजाम ईश्वर के हाथ में हो और कायनात की सारी चीज़ों के लिए कामयाबी का रास्ता केवल यह हो कि वह ईश्वर की मर्ज़ी को पा ले। इस तरह वह पैग़ंबरी और वह्य की ज़रूरत साबित करके उसकी तरफ़ बुलाता है। फिर वह इंसान को कायनात की उन व्यवस्थाओं की याद दिलाता है, जो ईश्वर ने इंसान के लिए की हैं और जिनके बिना इंसानी ज़िंदगी की कल्पना नहीं की जा सकती। इन उपकारों की अनिवार्य माँग यह है कि आदमी अपने उपकारी (benefactor) के आगे झुक जाए। फिर वह इंसान को बताता है कि वह कितना विवश और तुच्छ प्राणी है और ख़ुद उसकी अपनी विवशता की ही यह माँग है कि वह ईश्वर की रस्सी को मज़बूती से थाम ले, जिसके सिवा दरअसल यहाँ कोई और सहारा नहीं है।

यह सारी बातें जो क़ुरआन पेश करता है, इन सबके सिलसिले में उसका

मूल तर्क देना इंसान के अपने अस्तित्व और ज़मीन व आसमान के अंदर फैली हुई निशानियों से भरा हुआ है। वह हमारे अवलोकनों और अनुभवों के ही तर्कों से हमें अपने नज़रिये का मोमिन* बनाना चाहता है, इसलिए उन निशानियों को सही रूप में समझने और उनसे पूरा फ़ायदा उठाने के लिए ज़रूरी है कि हमें उनके बारे में ज़रूरी ज्ञान प्राप्त हो। जब क़ुरआन कायनात की किसी घटना की ओर इशारा करे तो हमें मालूम हो कि वह क्या है। वह जब किसी निशानी का हवाला दे तो हम जानते हों कि हमारी ज़िंदगी के लिए उसकी क्या अहमियत है। वह जब किसी तर्क का ज़िक्र करे तो हम उस तर्क के बारे में इतनी जानकारी रखते हों कि उस पर सोच-विचार कर सकें। मतलब यह कि वह जब भी कायनात के किसी पहलू को हमारे सामने लाए तो हमारी आँखें उसे देखने के लिए खुली हुई हों और हमारा ज़हन उसे समझने के लिए ज़रूरी जानकारी अपने पास रखता हो।

एक आदमी कह सकता है कि क़ुरआन में कायनात के जिन तर्कों का वर्णन किया गया है, वह आख़िर संक्षिप्त शैली में ही क्यों हैं। उनको इतना विस्तृत होना चाहिए था कि क़ुरआन में उन्हें पढ़ लेना काफ़ी होता, बाहरी जानकारी लेकर उसका अध्ययन करने की ज़रूरत न होती। जवाब यह है कि इंसानी भाषा में कोई भी किताब ऐसी नहीं लिखी जा सकती, जिसमें वह सारी बातें अपने सारे विवरण के साथ दर्ज हों, जिनका उस किताब में ज़िक्र आया है। हर लेखक को अनिवार्य रूप से यह मानना पड़ता है कि उसका पढ़ने वाला कुछ जानकारियाँ पहले से रखता होगा। अगर ऐसा न हो तो दुनिया में केवल एनसाइक्लोपीडिया ही अस्तित्व में हो, कोई संक्षिप्त किताब लिखी ही न जा सके। यही कारण है कि क़ुरआन ने बहुत से मामलों में केवल इशारों से काम लिया है। जो बातें वह्य के बिना मालूम नहीं की जा सकतीं, उनका तो क़ुरआन में पूरा विवरण दिया गया है मगर वह बातें जिन्हें जानने के लिए अनिवार्य रूप से वह्य की ज़रूरत नहीं है, बल्कि इंसान ईश्वर की दी हुई बुद्धि से काम लेकर भी उन्हें मालूम कर सकता है तो ऐसी बातों की ओर केवल इशारा कर दिया गया है और इंसान से कहा गया है कि उन पर सोच-विचार करे।

इसके अलावा क़ुरआन की इस वर्णन-शैली के पीछे एक और महान नीति है। क़ुरआन एक आम आदमी के लिए भी है और एक दार्शनिक के लिए भी।

---

* सच्चे हृदय से ईश्वर की उपासना एवं उसके आदेशों का पालन करने वाला व्यक्ति।

वह अतीत के लिए भी था और भविष्य के लिए भी है। इसलिए उसने अपनी बातचीत का ऐसा तरीक़ा अपनाया, जो डेढ़ हज़ार साल पहले के इंसान के लिए भी समझने योग्य हो सकता था और फिर उन सभी लोगों के लिए भी उसके अंदर नसीहत है, जो आगे प्राप्त जानकारी को दिमाग़ में रखकर क़ुरआन का अध्ययन करें। क़ुरआन में उन तर्कों का ज़िक्र करते हुए ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया है, जो आने वाले समय में प्राप्त जानकारी को भी समेट लेते हैं। यह क़ुरआनी कथन-शैली का चमत्कार है कि कायनात की निशानियों का ज़िक्र करते हुए वह ऐसे शब्द इस्तेमाल करता है, जिनके अंदर एक ऐसा आदमी भी संतुष्टि प्राप्त कर लेता है जो कायनात के बारे में बहुत थोड़ी जानकारी रखता हो और उन्हीं शब्दों में एक वैज्ञानिक और दार्शनिक के लिए भी संतुष्टि और सांत्वना का सामान मौजूद है।

4. दूसरी चीज़ जिसको क़ुरआन ने तर्क का आधार बनाया है, वह इतिहास है। क़ुरआन इंसानी इतिहास को दो दौरों में विभाजित करता है। एक छठी शताब्दी ईसा पूर्व का इतिहास, जिसे वह इस अंदाज़ में पेश करता है कि वह सच और झूठ के टकराव का इतिहास है, जिसमें अनिवार्य रूप से हमेशा सच की जीत हुई है और झूठ की हार हुई है। क़ुरआन के अनुसार छठी शताब्दी ईस्वी तक इंसानी इतिहास जिस तरीक़े से सफ़र करता रहा है, वह यह है कि ज़मीन के ऊपर इंसान ने जितनी भी आबादी क़ायम की, उनमें ईश्वर की ओर से एक प्रतिनिधि (पैग़ंबर) आया। उसने इंसानों को उनकी ज़िंदगी का मक़सद बताया। उसने कहा कि ईश्वर ने मुझे यह संदेश देकर तुम्हारे पास भेजा है कि तुम उसकी बंदगी करो और मैं जो कुछ कहूँ, उसे मानो। उसने कहा कि अगर तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो तबाह कर दिए जाओगे। इस तरह पैग़ंबर की यह चुनौती कि ज़िंदगी और मौत के बाद की कामयाबी उसके निमंत्रण को मानने या न मानने पर है, यह ख़ुद पैग़ंबर के दावे के सही होने को जाँचने की एक कसौटी बन गई।

क़ुरआन कहता है कि इतिहास किसी अपवाद के बिना लगातार इस दावे के पक्ष में फ़ैसला करता आया है कि जब भी ईश्वर का कोई पैग़ंबर सामने आया तो कुछ लोगों ने उसके निमंत्रण को स्वीकार किया और कुछ लोगों ने नहीं किया। अगर पैग़ंबर के मानने वालों की संख्या इतनी हुई कि वह एक संगठित दल का रूप धारण कर सके तो उसे नकारने वाले दल से टकराया गया और उन्हें हराकर ख़त्म

कर दिया गया और अगर पैग़ंबर का साथ देने वाले कम हुए तो ईश्वर ने अपनी असाधारण सहायता भेजकर उनकी मदद की। आख़िरी कोशिश तक समझाने के बाद आख़िरकार एक पैग़ंबर की ज़ुबान से यह चैलेंज दे दिया गया—

"अपनी बस्तियों में तीन दिन और चल-फिर लो, (इसके बाद तुम्हारे लिए ज़िंदगी का कोई मौक़ा नहीं) यह वादा झूठा नहीं है।" (11:65)

इसलिए ईश्वर का प्रकोप अपने ठीक समय पर आया, उस पैग़ंबर और उसके मानने वालों के सिवा सब लोगों को ख़त्म कर दिया गया। इस तरह हर ज़माने में ईश्वर अपने पैग़ंबरों को प्रभावी करके उनके दावे का सही होना साबित करता रहा है। यह मानो इतिहास की गवाही है कि पिछली तारीख़ में जिन लोगों ने अपने आपको ईश्वर के प्रतिनिधि की हैसियत से प्रस्तुत किया, वे हक़ीक़त में ईश्वर के प्रतिनिधि थे और इंसान के लिए ज़रूरी है कि उनकी शिक्षाओं को अपनाए। जो ऐसा न करेगा, वह तबाह व बरबाद हो जाएगा। ठीक यही स्थिति ख़ुद आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद के सिलसिले में पैदा हुई जिनके बारे में ईसा मसीह का यह कथन पूरा हुआ— "जो उससे टकराएगा, वह तबाह हो जाएगा।"

इतिहास की यह स्थिति हमें इतिहास के अध्ययन का ध्यान दिलाती है ताकि हम क़ुरआन के उन वादों को समझ सकें जो उसने पिछली क़ौमों के बारे में किए हैं; मगर इस सिलसिले में एक बड़ी परेशानी यह है कि पिछला इतिहास अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं है। पिछली सदियों में जिन लोगों के हाथों विद्याओं की उन्नति हुई है, उन्होंने विज्ञान और इतिहास दोनों को बिगाड़ने की पूरी कोशिश की है। कायनात का अध्ययन उन्होंने इस ढंग से किया मानो वह अपने आपमें कोई स्थायी चीज़ है और अपने आप गतिविधि करती है। वह अध्ययन उन्हें सिर्फ़ इस हद तक पहुँचाता है कि 'जो है, वह क्या है'। वह उसकी तरफ़ निशानदेही नहीं करता कि 'जो कुछ हो रहा है, वह क्यों हो रहा है'। इस सिलसिले में न केवल यह कि विज्ञान के विद्वान ख़ामोश रहते हैं बल्कि उनमें से बहुत से लोगों ने यह साबित करने की कोशिश भी की कि जो कुछ हमें महसूस होता है, वही असल हक़ीक़त है। इसके पीछे कोई और हक़ीक़त नहीं। कायनात की आश्चर्यजनक व्यवस्था और उसके विभिन्न अंशों का पारस्परिक सहयोग (mutual cooperation) इस बात का सबूत नहीं है कि उसके पीछे कोई बहुत बड़ा ज़हन काम कर रहा है, बल्कि यह केवल एक

अच्छा संयोग है, इसके सिवा और कुछ नहीं।

इसी तरह इतिहास-लेखन की दिशा भी बिल्कुल दूसरी अपनाई गई है। प्राचीन इतिहास में क़ौमों के उत्थान व पतन (rise and fall) की बहुत ही आश्चर्यजनक घटनाएँ नज़र आती हैं। ज़मीन के अंदरूनी हिस्सों से ऐसे निशान बरामद हुए हैं, जिनसे साबित होता है कि कितनी विकसित और सुसंस्कृत (cultured) क़ौमें थीं, जो ज़मीन के नीचे दबा दी गईं, मगर हमारे इतिहासकारों के नज़दीक उन घटनाओं का सच और झूठ की लड़ाई से कोई संबंध नहीं है। जैसे मिस्र के इतिहास में फ़िरऔन के पानी में डूबने का ज़िक्र इस तरह आता है कि बादशाह एक दिन दरिया में नहाने गए थे कि संयोग से वहाँ डूब गए। इस तरह पहले के इतिहासकारों का दृष्टिकोण उस इतिहास-दर्शन से बिल्कुल अलग है, जो क़ुरआन ने पेश किया है।

कहने का मतलब यह है कि विज्ञान और इतिहास, दोनों की दिशा मौजूदा ज़माने में ग़लत हो गई है, फिर भी जहाँ तक पहली चीज़ यानी प्राकृतिक विज्ञान का संबंध है, तो सबसे पहले तो सारे वैज्ञानिकों का अंदाज़ा बराबर नहीं है। दूसरी बात यह कि उनके हासिल किए गए नतीजों को भी बड़ी आसानी से सही दिशा की ओर मोड़ा जा सकता है। उनके सिलसिले में हमारा काम केवल यह है कि जिन घटनाओं को वे संयोग या प्राकृतिक नियमों का नतीजा कहते हैं, उनको ईश्वर के अधिकार का नतीजा साबित करें; मगर इतिहास के सिलसिले में एक अहम सवाल यह है कि क्या किया जाए। क़ुरआन के अलावा सिर्फ़ इस्राईली क़ौम का धार्मिक साहित्य है, जो क़ुरआन के ऐतिहासिक दृष्टिकोण का समर्थन करता है। इसके अलावा संभवत: कहीं से भी इसका समर्थन नहीं मिलता। इस सिलसिले में क़ुरआन को जानने वाले को बहुत से काम करने हैं, जैसे— दूसरे धर्मों के साहित्य का इस हैसियत से निरीक्षण करना कि वह समुदायों के उत्थान व पतन की क्या तस्वीर पेश करता है। उनके यहाँ बहुत-सी ग़लत परंपराएँ शामिल हो गई हैं, मगर यह बिल्कुल संभव है कि ऐसे इशारे और ऐसी बुनियादें मिल सकें, जिनसे क़ुरआन की ऐतिहासिक कल्पना के पक्ष में तार्किक अंदाज़ा हासिल किया जा सके।

इसी तरह प्राचीनतम इतिहासकारों के यहाँ छानबीन करनी है कि उन्होंने पहली क़ौमों के हालात के बारे में क्या कुछ लिखा है। पुरातत्व (archeology) की खुदाई से जो चिह्न और शिलालेख (inscription) बरामद हुए हैं, उनका

निरीक्षण करके देखना है कि उनके द्वारा क़ुरआन के इतिहास-दर्शन का किस हद तक समर्थन होता है। यह एक बहुत मुश्किल काम है, मगर पुरानी तार्किकता के एक अंश को स्पष्ट करने के लिए ज़रूरी है कि इस सिलसिले में भी कुछ काम किया जाए। यह काम क़ुरआन के हर इच्छुक का नहीं है, मगर कुछ लोगों को ज़रूर यह काम करना चाहिए, ताकि दूसरे लोग उनकी जाँच-पड़ताल से फ़ायदा उठा सकें।

जीव विज्ञान के विशेषज्ञों का विचार है कि इंसान अपनी मौजूदा योग्यताओं के साथ लगभग तीन लाख वर्ष से इस ज़मीन पर आबाद है, मगर उन्हें यह बात बड़ी आश्चर्यजनक लगती है कि मौजूदा सारी बौद्धिक योग्यताओं के बावजूद इंसान ने असल तरक़्क़ी अभी कुछ सौ वर्षों से की है। इससे पहले हज़ारों-लाखों वर्ष तक वह ख़ानाबदोशों की ज़िंदगी जीता रहा और पत्थर के कुछ बेढंगे हथियार बनाने के अलावा उसने कोई ख़ास तरक़्क़ी नहीं की। उसे अपने हथियारों को सीधी धार देने और आग का इस्तेमाल सीखने के लिए हज़ारों वर्ष लगे। ऐसा विचार किया जाता है कि अब से छह हज़ार साल पहले इंसान को नील नदी की घाटी में ख़ुद उगने वाले जौ उगते हुए दिखाई दिए और उस अवलोकन से उसने खेती का राज़ मालूम किया। इसका तरीक़ा मालूम होने और इसे अपनाने से इंसान रिहायशी ज़िंदगी जीने के लिए मजबूर हुआ और इसके बाद संस्कृति (culture) की बुनियाद पड़ी, मगर यह मानव इतिहास का सही अध्ययन नहीं है। हक़ीक़त यह है कि इस ज़मीन पर बार-बार बहुत ही शानदार संस्कृतियाँ पैदा हुईं और मिटा दी गईं, क़ौमें उभरीं और ख़त्म हो गईं।

पिछले ज़माने में जब पैग़ंबरों के आने का सिलसिला जारी था। किसी क़ौम में पैग़ंबर का आना हक़ीक़त में उसके लिए ईश्वर की अदालत का स्थापित होना था। इतिहास में बार-बार ऐसा हुआ है कि क़ौमें उभरीं और उन्होंने बड़ी-बड़ी संस्कृतियाँ क़ायम कीं। प्रसिद्ध इतिहासकार सर फ़्लिंडर्स ने अपनी किताब 'द रेवोल्यूशन ऑफ़ सिविलाइज़ेशन' (The Revolution of Civilization) में लिखा है कि संस्कृति एक निरंतर प्रदर्शन है, जो बार-बार होती है। उसने साबित किया है कि पिछले दस हज़ार वर्षों में लगभग आठ 'सांस्कृतिक युग' गुज़रे हैं। हर दौर से पहले एक ज़माना बर्बरता का गुज़रा है और उसके बाद पतन का दौर आया है। इस ऐतिहासिक दृष्टिकोण को सही

मान लिया जाए तो इससे भी हमारे विचार का समर्थन होता है, मगर जब पैग़ंबर आया और उन्होंने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया तो ईश्वर की अदालत से उनके लिए उनके ख़ात्मे का फ़ैसला हुआ और वे अपने बड़े-बड़े शहरों और क़िलों के साथ तबाह कर दी गईं।

मौजूदा दौर का यह अंजाम अब क़यामत के दिन होगा। उस समय सारी दुनिया को एक ही समय ख़त्म करके सारे इंसान ईश्वर की अदालत में लाए जाएँगे। इस स्थिति ने प्राचीनकाल में संस्कृति को उन्नति व स्थायित्व के वह अवसर नहीं दिए, जिनका अवसर बाद के युग में मिला है। प्राचीन इतिहास और आधुनिक इतिहास के इस पक्ष की जानकारी ईमान को बढ़ाने वाली भी है और क़ुरआनी तार्किकता को समझने के लिए बहुत अहम भी।

5. इस सिलसिले में जो आख़िरी चीज़ क़ुरआन के अध्ययन के लिए सहायक ज्ञान की हैसियत रखती है, वह इस्राईली क़ौम की धार्मिक किताबों का अध्ययन है, जिनका क़ुरआन में बार-बार वर्णन हुआ है। क़ुरआन के अध्ययन के सिलसिले में इन किताबों का अध्ययन करना जैसे एक आसमानी किताब को समझने के लिए दूसरी आसमानी किताब से मदद लेना है। इसका मतलब यह नहीं है कि पहली किताबों को मापदंड के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। यह किताबें कभी मापदंड नहीं बन सकतीं। इतना ही नहीं, उनमें मिलावट हो चुकी है और वे अपने मूल रूप में बाक़ी नहीं रही हैं। यह बात कि क़ुरआन आसमान से उतरने वाली आख़िरी किताब है और बाक़ी सभी किताबें इससे पहले की हैं, सिर्फ़ यह हक़ीक़त इसके सबूत के लिए काफ़ी है कि क़ुरआन को ही मापदंड होना चाहिए।

किसी बादशाह का आख़िरी हुक्म उसके अपने पहले हुक्मों को रद्द करना होता है, न कि पहले हुक्म उसके आख़िरी हुक्म को रद्द करते हैं। जो आदमी आख़िरी हुक्म को छोड़कर पहले के हुक्म की पैरवी करता है और कहता है कि यह भी तो मालिक ही की तरफ़ से आया है, तो वह पूरी तरह से इच्छाभक्ति से ग्रस्त है। वह अपनी राय की पूजा कर रहा है, न कि हुक्म देने वाले के हुक्म की। इसलिए क़ुरआन ईश्वर की मर्ज़ी मालूम करने के लिए अंतिम प्रमाण की हैसियत रखता है। बाक़ी किताबों से हम क़ुरआन का असल मतलब समझने में मदद ले सकते हैं, लेकिन उन्हें पूर्ण तर्क नहीं बना सकते।

मदद लेने की दो स्थिति हैं। एक तो भाषा और वर्णन-शैली की दृष्टि से

और दूसरी शिक्षा की दृष्टि से। यह पता है कि बाइबल और इस्राइलियों की किताब ओल्ड टेस्टामेंट की मूल भाषा हिब्रू है और अरबी व हिब्रू दोनों ही एक मूल से निकली हैं, इसलिए क़ुदरती तौर पर दोनों भाषाओं में काफ़ी समानता है और एक भाषा दूसरी भाषा को समझने में मदद करती है। फिर आसमानी किताबों की एक विशेष वर्णन-शैली है। इस तरह पवित्र किताबों का अध्ययन उस विशेष वर्णन-शैली से हमें परिचित कराता है और उसकी गहराई को समझने में मदद करता है, जो आसमानी किताबों की हमेशा से रही है। इसलिए व्याख्याकारों ने क़ुरआन के बहुत से शब्दों और बयानों का मतलब समझने के लिए पहली किताबों से मदद ली है और बहुत ही लाभकारी अर्थों तक पहुँच प्राप्त की है।

दूसरी चीज़ शिक्षा है। अगर विवरण और समय की आवश्यकताओं की दृष्टि से आंशिक अंतर को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए तो यह एक सच्चाई है कि पिछली किताबों में भी वही सारी बातें ईश्वर की ओर से अवतरित की गई थीं, जो क़ुरआन के द्वारा हम तक भेजी गई हैं। इसलिए अपनी असल हक़ीक़त की दृष्टि से दोनों एक-दूसरे का समर्थन करने वाली हैं, न कि विरोध करने वाली। पहली किताबों की यही वह हैसियत है, जिसके आधार पर वह क़ुरआन के अध्ययन के लिए एक उपयोगी स्रोत की हैसियत रखती है। जिस तरह क़ुरआन में एक ही विषय का अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग तरीक़ों से वर्णन किया गया है और इस तरह की किसी एक आयत को समझने के लिए उसी तरह की दूसरी आयत से मदद मिलती है। ठीक इसी तरह ईश्वर का कथन जो बाद के ज़माने में क़ुरआन के रूप में आया है, वह इससे पहले बनी इस्राईली क़ौम के पैग़ंबरों पर अलग-अलग रूपों में अवतरित होता रहा है। इसलिए पहली किताबों में ईश्वर का जो कथन है, वह उसके बाद के कथन को समझने में एक मददगार की हैसियत रखता है।

यह क़ुरआन के सिलसिले में सहायक विद्याओं का एक संक्षिप्त वर्णन है। आख़िर में मैं उसी बात को फिर दोहराऊँगा, जिसे मैं शुरू में कह चुका हूँ यानी यह कि इन सबसे बढ़कर जो चीज़ क़ुरआन से फ़ायदा हासिल करने या क़ुरआन को समझने के लिए ज़रूरी है, वह इंसान का अपना इरादा है। शेष विद्याएँ क़ुरआन को समझने में मदद कर सकती हैं, मगर क़ुरआन का ज्ञान जज़्ब करने के लिए किसी बाहरी ज्ञान की ज़रूरत नहीं। इंसान की अपनी हासिल करने की भावना ही

वह चीज़ है, जिसके ज़रिये वह क़ुरआन को जज़्ब करता है। क़ुरआन मार्गदर्शन की किताब है। किसी के ज़हन में क़ुरआन का उतर जाना दूसरे शब्दों में यह मतलब रखता है कि उस आदमी को मार्गदर्शन मिल गया। उसे भलाई या बुराई के दो रास्तों में से उस रास्ते को अपनाने का हौसला मिला, जो उसकी ज़िंदगी को कामयाबी की ओर ले जाने वाला है और मार्गदर्शन का मिलना-न-मिलना आदमी के अपने इरादे पर निर्भर है। मार्गदर्शन देने वाला ईश्वर है। उसके सिवा कहीं और से आदमी मार्गदर्शन हासिल नहीं कर सकता; मगर ईश्वर की ओर से मार्गदर्शन उसी को मिलता है, जो उसका इच्छुक हो। इसलिए क़ुरआन का अध्ययन उसी के लिए फ़ायदेमंद साबित होता है और किसी ऐसे ही आदमी को यह हौसला मिलता है कि क़ुरआन उसकी ज़िंदगी में दाख़िल हो जाए। जिसे सच्चाई की तलाश हो, जो वाक़ई सही अर्थों में क़ुरआन का इच्छुक हो। जो अपने अंदर यह इरादा पैदा कर चुका हो कि सच्चाई उसे जहाँ और जिस रूप में भी मिलेगी, वह उसे ले लेगा और उससे लिपट जाएगा। क़ुरआन का ज्ञान किसी स्कूल के सर्टिफिकेट के रूप में आदमी को नहीं मिलता, न ही पुस्तकालयों की अलमारियों से उसे ज़हन में स्थानांतरित (transfer) किया जा सकता है। यह उसी को मिलता है, जो वास्तविक अर्थों में क़ुरआन का इच्छुक हो। जिसके अंदर इतना हौसला हो कि हर निजी रुझान की तुलना में सच्चाई को अहमियत दे सके। जो क़ुरआन को ईश्वर की किताब समझकर उसका अध्ययन करे और इसकी तुलना में अपनी वह हैसियत समझे, जो एक बंदे की अपने मालिक के हुक्म की तुलना में होती है। जब बंदा अपने ज़हन को साफ़ करके क़ुरआन को सुनने-समझने वाला बनाता है तो ईश्वर उसकी ओर ध्यान देता है और क़ुरआन के अर्थ उसके ज़हन में उतरते चले जाते हैं, जैसे सूखी ज़मीन में बारिश हो और बूँद-बूँद करके उसमें समाती चली जाए। उसे सत्य जहाँ और जिस रूप में मिलेगा, वह इसे ले लेगा और इससे लिपट जाएगा।

क़ुरआन की हिफ़ाज़त

"हमने क़ुरआन को उतारा है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"
(क़ुरआन, 15:9)

क़ुरआन 23 वर्ष में उतरा। सबसे पहली आयत जो उतरी, वह 'आयते-इल्म' (96:1) थी और आख़िरी आयत 'आयते-आख़िरत' (2:281)। शुरुआती 23 वर्ष तक ख़ुद पैग़ंबर-ए-इस्लाम की शख़्सियत क़ुरआन को लेने का ज़रिया थी। अपने बाद आपने कुछ लोगों को नामज़द कर दिया कि मेरे बाद उनसे तुम क़ुरआन सीखना। यह वे लोग थे, जिन्होंने बहुत ही सही तरीक़े से पूरे क़ुरआन को अपने सीने में सुरक्षित कर लिया था और अरबी भाषा से गहरी जानकारी और पैग़ंबर-ए-इस्लाम की निरंतर संगति की वजह से इस योग्य हो गए थे कि प्रामाणिक रूप से क़ुरआन की शिक्षा दे सकें।

दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ के ज़माने में एक आदमी कूफ़ा से मदीना आया। बातचीत के दौरान उसने आपसे कहा कि कूफ़ा में एक आदमी याददाश्त के आधार पर क़ुरआन पढ़ाता है। यह सुनकर हज़रत उमर ग़ुस्सा हो गए, मगर जब यह मालूम हुआ कि वह बुज़ुर्ग अब्दुल्ला बिन मसऊद हैं तो आप ख़ामोश हो गए (इस्तिआब, जिल्द 1, पेज नं० 377)। इसका कारण यही था कि अब्दुल्ला बिन मसऊद को पैग़ंबर-ए-इस्लाम की अनुमति प्राप्त थी। आपके द्वारा जिन लोगों को यह अधिकार प्राप्त था उनमें कुछ प्रमुख लोग यह थे— उस्मान, अली, उबई इब्ने-कअब, ज़ैद बिन साबित, इब्ने-मसऊद, अबू दरदा, अबू मूसा अशअरी, सालिम मौला अबी हुज़ैफ़ा।

यह लोग हमेशा नहीं रह सकते थे। यह अंदेशा बना हुआ था कि किसी समय ऐसे सारे लोग ख़त्म हो जाएँ और क़ुरआन दूसरे लोगों के हाथों में जाकर मतभेद का शिकार हो जाए। यमामा की लड़ाई (12 हिजरी*) के बारे में ख़बर आई कि बड़ी संख्या में मुसलमान क़त्ल हो गए हैं। उमर, पहले ख़लीफ़ा हज़रत

* पैग़ंबर और उनके साथियों का मक्का से मदीना के प्रवास को हिजरत कहा जाता है। इसी दिन से इस्लामिक कैलेंडर आरंभ होता है, जिसे साल हिजरी में मापा जाता है।

अबू बक्र सिद्दीक़ के पास आए और कहा कि अब क़ुरआन की सुरक्षा की इसके अलावा कोई स्थिति नहीं है कि इसे लिखित रूप में नियमपूर्वक संकलित कर लिया जाए। इस अवसर पर रिवायत में इन शब्दों का वर्णन है— "जब सालिम मौला अबू हुज़ैफ़ा का क़त्ल हुआ तो उमर को ख़तरा महसूस हुआ कि कहीं क़ुरआन ज़ाया न हो जाए, वह अबू बक्र के पास आए।"

(फ़त्ह-उल-बारी, जिल्द 9, पेज नं० 9)

यमामा की जंग में पैग़ंबर के लगभग 700 साथी मारे गए थे, मगर उमर को 'क़ुरआन को नुक़सान' होने का ख़तरा सालिम की मौत की वजह से हुआ। इसकी वजह यह थी कि वह उन कुछ ख़ास साथियों में से थे, जिन्हें पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने क़ुरआन पढ़ाने की इजाज़त दी थी।

जैसा कि साबित है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम क़ुरआन के उतरते ही उसे फ़ौरन लिखवा दिया करते थे। लिखने की अहमियत इतनी ज़्यादा थी कि सूरह निसा आयत नं० 195 उतर चुकी थी। बाद में 'ग़ैरी-ऊलीज़्ज़रर' के शब्द इस आयत में वृद्धि के रूप में उतरे। इमाम मालिक के शब्दों में यह एक शब्द भी आपने उसी समय लिखने वाले को बुलवाकर लिखवाया।

जब आयत 'ला यसतवी अल-क़ायदून' आख़िर तक उतरी तो पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद ने कहा कि ज़ैद को बुलाओ और वह तख़्ती, क़लम, और स्याही लेकर आएँ। जब वह आ गए तो कहा— "लिखो, ला यसतवी।" (सही बुख़ारी)

आपका नियम था कि अवतरित आयत को लिखवाने के बाद उसे पढ़वाकर सुनते। ज़ैद बिन साबित का बयान है कि अगर कोई हिस्सा लिखने से छूट जाता तो उसे ठीक कराते। जब यह सब काम पूरा हो जाता, तब लोगों के बीच प्रचार-प्रसार का हुक्म दिया जाता। लिखने वालों की संख्या 42 तक मानी गई है (अत-तरातीबुल इदारिया, जिल्द 1,पेज नं०16)। इब्ने-अब्दुल बर ने 'ईक़दुल फ़रीद' (जिल्द 4,पेज नं०114) में लिखा है कि हंज़ला इब्ने-रबी इन सभी लिखने वालों के सरदार थे यानी उन्हें हुक्म था कि वह हर समय आपके साथ रहें। आपकी इस व्यवस्था का नतीजा यह था कि जब आपकी मौत हुई तो बड़ी संख्या में लोगों के पास क़ुरआन के अंश लिखे हुए मौजूद थे। एक संख्या उन लोगों की भी थी, जिनके पास पूरा क़ुरआन अपने मूल क्रम के साथ संग्रहीत रूप में मौजूद था। इनमें से चार विशेष रूप से वर्णन-योग्य हैं— अबू दरदा, मआज़ बिन जबल, ज़ैद बिन साबित और अबू ज़ैद।

> ‘पैग़ंबर-ए-इस्लाम की मौत हुई तो चार आदमियों के पास पूरा क़ुरआन लिखित रूप में मौजूद था— अबू दरदा, मआज़ बिन जबल, ज़ैद बिन साबित और अबू ज़ैद।’
>
> (फ़ज़ाईलुल क़ुरआन लि-इब्ने-कसीर, जिल्द 1, पृष्ठ 158)

क़ुरआन पूरी तरह से लिखा हुआ पैग़ंबर के दौर में मौजूद था, हालाँकि किताब के रूप में एक जगह सजिल्द नहीं हुआ था। क़स्तलानी ने लिखा है—

> “क़ुरआन पूरी तरह से पैग़ंबर-ए-इस्लाम के ज़माने में ही लिखा जा चुका था, लेकिन सारी सूरतों को एक जगह जमा नहीं किया गयाथा।”
>
> (अल-कितानी, जिल्द 2, पेज नं०384)

हारिस मुहासबी, जो इमाम हंबल के समकालीन हैं, ने अपनी किताब ‘फ़हमुल सुनन’ में लिखा है—

> “क़ुरआन की सूरतें उसमें अलग-अलग लिखी हुई थीं। अबू बक्र के हुक्म से संग्रहकर्ता (ज़ैद बिन साबित) ने एक जगह सब सूरतों को जमा किया और एक धागे से सबको व्यवस्थित किया।”

क़ुरआन को लिखने के तीन चरण थे— लेखन, संपादन और जमा। पहले चरण में जब कोई आयत या सूरत उतरती तो उसे किसी टुकड़े पर लिख लिया जाता था। इस सिलसिले में निम्न चीज़ों के नाम आए हैं—

रुक़ाअ— चमड़ा

लिख़ाफ़— पत्थर की सफ़ेद पतली तख़्तियाँ (सलेट)

कत्फ़— ऊँट के बाज़ू की गोल हड्डी

असीब— खजूर की शाख़ का चौड़ा हिस्सा

दूसरे चरण की प्रक्रिया को हदीस में संपादन से स्पष्ट किया गया है (मुस्तदरक हाकिम)। सबसे पहले हर आयत को अवतरित होते ही लिख लिया जाता था, फिर जब सूरत पूरी हो जाती तो पूरी सूरत को क्रमबद्ध रूप में चमड़े पर लिखा जाता था। इस तरह संपादित क़ुरआन (पूरा या अधूरा) पैग़ंबर के दौर में ही बड़ी संख्या में लोगों के पास आ चुका था।उमर के ईमान लाने की प्रसिद्ध घटना में यह बात है कि अपनी बहन को चोट पहुँचाने के बाद आपने कहा कि वह किताब मुझे दिखाओ, जो अभी तुम पढ़ रही थीं (इब्ने-हिशाम)। बहन ने जवाब दिया, “नापाकी के साथ तुम इसे नहीं छू सकते।” फिर आप नहाए और उनकी बहन ने किताब उन्हें दी।

तीसरे चरण के कार्य को 'जमा' करने से स्पष्ट किया गया है यानी पूरे क़ुरआन को एक ही जिल्द में जमा करके लिखना। पैग़ंबर के ज़माने में क़ुरआन अलग-अलग वस्तुओं पर विभिन्न हिस्सों में होता था। इसलिए सारी सूरतों को एक ही आकार और साइज़ के पन्नों पर लिखवाकर एक ही जिल्द में बाँधने का तरीक़ा आपके समय में प्रचलित न था। पैग़ंबर के केवल चार साथी — उबई बिन कअब, मआज़ बिन जबल, अबू ज़ैद, ज़ैद बिन साबित थे, जिन्होंने पूरा क़ुरआन पैग़ंबर के दौर में एकत्रित रूप में तैयार कर लिया था, फिर भी उनकी हैसियत निजी संग्रहों की थी। पहले ख़लीफा अबू बक्र ने जो काम किया, वह यही था कि उन्होंने राज्य के प्रबंधन के तहत सारी सूरतों को एक ही आकार और साइज़ पर लिखवाकर एक जिल्द में तैयार कराया। ज़ैद बिन साबित ने काग़ज़ के टुकड़े पर अबू बक्र के हुक्म से क़ुरआन की सारी सूरतों को लिखा था। कुछ जाँचकर्ताओं ने यह विचार व्यक्त किया है कि जब एक ही आकार के पन्ने बनाए जाते थे तो उनको क़रातीस (काग़ज़ के टुकड़े) कहते थे। एक साइज के पन्नों पर लिखे होने के कारण अबू बक्र की हुकूमत में संकलित किए गए उस संस्करण को रुबाअ कहते थे। रुबाअ का अनुवाद चौकोर किया जा सकता है। इससे मालूम होता है कि उन पन्नों की लंबाई-चौड़ाई संभवत: बराबर थी। कहा जाता है कि उमर के दौर में मिस्र, इराक़, शाम (मौजूदा सीरिया) और यमन आदि में क़ुरआन के एक लाख से ज्यादा संस्करण (editions) मौजूद थे।

बाद के ज़माने में लिखा हुआ क़ुरआन ही लोगों के लिए क़ुरआन को सीखने का ज़रिया बन सकता था, फिर भी एक ख़तरा अब भी था। पवित्र किताब में बहुत ही सामान्य अंतर भी एक बड़े मतभेद का कारण बन जाता है, इसलिए यह अंदेशा था कि अलग-अलग लोग अगर अपने-अपने तौर पर क़ुरआन लिखें तो लिखने और पढ़ने का अंतर मुसलमानों के अंदर बहुत बड़ा मतभेद खड़ा कर देगा और उसे ख़त्म करने का कोई रास्ता बाक़ी न रहेगा, जैसे— सूरह फ़ातिहा में एक ही शब्द को केवल बोलने के अंतर से कोई 'मालिकी यौमिद्दीन' लिखता है तो कोई 'मलिकि यौमिद्दीन' और कोई 'मलीकी यौमिद्दीन'। फिर जैसे-जैसे ज़माना गुज़रता, लेखन-शैली और लिपि का अंतर नए-नए मतभेद पैदा करता चला जाता। इसलिए उमर की सलाह से पहले ख़लीफ़ा अबू बक्र ने तय किया कि सरकारी प्रबंधन में क़ुरआन का एक प्रामाणिक संस्करण लिखवा दिया जाए और पढ़ने में अंतर की संभावना को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया जाए।

इसके लिए ज़ैद बिन साबित सबसे ज़्यादा क़ाबिल आदमी थे, क्योंकि वह हज़रत मुहम्मद के लिपिक (scribe) थे। ज़ैद और उबई बिन कअब, दोनों 'अरज़ा-ए-अख़ीरह'* में शामिल थे और उन्होंने हज़रत मुहम्मद से सीधे तौर पर पूरे क़ुरआन को पैग़ंबरी क्रम के साथ सुना था। उन्हें पूरा क़ुरआन पूरी तरह से याद था और इसके साथ ही पूरा क़ुरआन संकलित रूप से लिखा हुआ भी उनके पास मौजूद था। पहले ख़लीफ़ा ने उन्हें हुक्म दिया कि तुम क़ुरआन इकट्ठा करने के लिए खोजबीन शुरू करो और उसे जमा कर दो। इस बात के तय होने के बाद उमर ने मस्जिद में ऐलान कर दिया कि जिसके पास क़ुरआन का जो भी टुकड़ा मौजूद हो, वह ले आए और ज़ैद के सामने पेश करे।

पहले ख़लीफ़ा के ज़माने में क़ुरआन 'काग़ज़' यानी चमड़े, पत्थर और खजूर के पेड़ की छाल आदि पर लिखा हुआ तो मौजूद था और बहुत से लोगों के सीनों में, पैग़ंबर-ए-इस्लाम से सुनकर, संकलित रूप में सुरक्षित था लेकिन वह एक किताब की तरह जिल्द के रूप में अब तक जमा नहीं हुआ था। पहले ख़लीफ़ा ने हुक्म दिया कि इसे जिल्द के रूप में जमा कर दो—

> "हारिस मुहासबी अपनी किताब फ़हमुल सुनन में लिखते हैं कि क़ुरआन का लेखन कोई नई बात नहीं थी, क्योंकि पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद उसे लिखवाया करते थे; लेकिन वे चमड़े, हड्डी और खजूर की शाख़ पर अलग-अलग तरह से लिखा हुआ था। अबू बक्र सिद्दीक़ ने उसे संकलित रूप में इकट्ठा लिखने का हुक्म दिया और यह उन पन्नों की तरह था, जो पैग़ंबर-ए-इस्लाम के घर में पाए गए। उनमें क़ुरआन छितरे हुए रूप में लिखा हुआ था। इसी को जमा करने वाले ने जमा कर दिया और एक धागे में इस तरह पिरो दिया कि उसका कोई हिस्सा ज़ाया न हो।" (अल-इतक़ान, जिल्द 1, पेज नं० 40)

अबू बक्र सिद्दीक़ के दौर में एकत्रित क़ुरआन का यह मतलब नहीं है कि इससे पहले क़ुरआन जमा न था और आपके शासन के दौर में इसे जमा किया

---

* पूरा क़ुरआन अवतरित होने के बाद फ़रिश्ते जिब्राईल ने उसे हज़रत मुहम्मद को दो बार उसी क्रम में सुनाया, जिस क्रम में क़ुरआन आज मौजूद है। हज़रत मुहम्मद ने ठीक वैसे ही दो बार जिब्राईल को सुनाया। यह क़ुरआन की फ़ाइनल चेकिंग थी और इससे क़ुरआन को क्रमबद्ध किया गया।

गया। क़ुरआन इससे पहले भी पूरी तरह जमा था। 'अरज़ा-ए-अख़ीरह' के बहुत से सहाबा को शामिल करके आपने उसकी पुष्टि भी कर दी थी। क़ुरआन के एकत्रीकरण का यह प्रबंधन केवल इसलिए हुआ कि थोड़े से संभावित अंतर को बाक़ी न रहने दिया जाए, जो याददाश्त और लेखन में अंतर के कारण हो सकते थे। जैसे—उमर ने ज़ैद बिन साबित को यह आयत सुनाई—

"मिनल मुहाजिरीना अल-अंसारि वल्लज़ीना इत्तबाऊहुम बि इहसान।"

"मुहाजिरीन, अंसार और जिन लोगों ने अच्छाई के साथ उनका अनुसरण किया।"

ज़ैद ने कहा कि मुझे तो यह आयत जिस तरह याद है, उसमें अंसार और अल्लज़ीना के बीच एक 'वाव' (और) भी है। तब इस बात की जाँच-पड़ताल शुरू हुई और आख़िरकार अलग-अलग लोगों की गवाहियों से यह साबित हुआ कि ज़ैद की राय सही थी। इस तरह किताब में आयत को 'वाव' के साथ इस तरह लिखा गया।

"मिनल मुहाजिरीना वल-अंसारि वल्लज़ीना इत्तबाऊहुम बिइहसान।" (9:100)

मौलाना बहरुलउलूम अपनी किताब 'शरह सुल्लम' में लिखते हैं, "क़ुरआन का यह क्रम, जिस पर वह आज है, पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद से साबित है। क़ुरआन को पढ़ने की दस शैलियों ने क़ुरआन को इसी क्रम से नक़ल किया है। यह दस शैलियाँ वह हैं, जो इस्लामी दुनिया में सभी को स्वीकार हैं और जिस पर सभी धार्मिक विद्वानों की सहमति है।"

ज़ैद बिन साबित ने जब पूरा क़ुरआन संकलित कर लिया तो उनकी किताब के अलावा जितने विभिन्न अंश जमा हुए थे, उन सबको जलाकर ख़त्म कर दिया गया। यह सजिल्द किताब पहले ख़लीफ़ा अबू बक्र के पास रख दी गई। आपकी मौत के बाद वह दूसरे ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ के पास रही। फिर आपकी मौत के बाद वह हफ़्सा बिंते-उमर के पास सुरक्षित रही।

जब तीसरे ख़लीफा हज़रत उस्मान के शासन का समय आया तो उस समय तक इस्लाम बहुत फैल चुका था और मुसलमानों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। उस समय अलग-अलग इलाक़ों के मुसलमानों के लिए क़ुरआन सीखने का ज़रिया पैग़ंबर के साथी थे, जो मदीना से निकलकर इस्लामी देशों में हर तरफ़ फैल गए थे, जैसे— सीरिया में उबई बिन कअब से क़ुरआन सीखते थे, कूफ़ा में

अब्दुल्ला बिन मसऊद से, इराक़ में अबू मूसा अशअरी से। फिर भी उच्चारण और लेखन में भिन्नता के कारण दोबारा लोगों में क़ुरआन के बारे में मतभेद होने लगे, यहाँ तक कि वे एक-दूसरे को काफ़िर कहने लगे (तिबयान अल-जज़ाइरी)। इब्ने-अबी दाऊद ने 'किताब-उल-मसाहिफ़' में लिखा है कि वलीद बिन उक़बा के ज़माने में एक बार वह कूफ़ा की मस्जिद में थे। हुज़ैफ़ा बिन अल-यमान भी उस समय मस्जिद में मौजूद थे। मस्जिद में एक गिरोह क़ुरआन के वर्णन में व्यस्त था। एक आदमी ने कोई आयत पढ़ी और कहा, "क़िरआतु अब्दुल्ला बिन मसऊद।" दूसरे ने इसी आयत को किसी और ढंग से पढ़ा और कहा, "क़िराअतु अबी मूसा अल-अशअरी।" हज़रत हुज़ैफ़ा यह सुनकर ग़ुस्सा हो गए। उन्होंने खड़े होकर एक संक्षिप्त भाषण दिया और कहा—

> "तुमसे पहले जो लोग थे, उन्होंने इसी तरह मतभेद किया। ख़ुदा की क़सम! मैं सवार होकर अमीरुल मोमिनीन (उस्मान) के पास जाऊँगा।"

अम्मारह बिन ग़ज़िय्या की रिवायत के अनुसार, हुज़ैफ़ा बिन अल-यमान वापस आए। वह एक फ़ौजी अफ़सर थे और उस समय आर्मीनिया और अज़रबैजान के फ़ौजी अभियान से लौटे थे। वह मदीना पहुँचे तो अपने घर जाने के बजाय सीधे तीसरे ख़लीफा उस्मान के पास आए और कहा—

> "ऐ अमीरुल मोमिनीन ! लोगों को सँभालिए, इससे पहले कि लोग ईश्वर की किताब के बारे में मतभेद में पड़ जाएँ, जिस तरह यहूदी और इसाई मतभेद में पड़ गए।"

उस्मान के ज़माने में ऐसे लोग इस्लाम में दाख़िल हो गए थे, जिनकी मातृभाषा अरबी न थी। ज़ाहिर हैं अरबी शब्दों व अक्षरों के सही उच्चारण वह नहीं कर सकते थे । ख़ुद अरब के विभिन्न क़बीलों की बोलचाल (dialects) अलग-अलग थी। इससे क़ुरआन के पढ़ने में मतभेद पैदा हुआ, नतीजे के तौर पर अनुकरण और लेख में मतभेद पैदा हो गया। इब्ने-क़ुतैबा ने लिखा है कि क़बीला बनी हुज़ैल 'हत्ता' को 'अत्ता' पढ़ता था। इब्ने-मसऊद इसी क़बीले से संबंध रखने के कारण 'हत्ताईन' को 'अत्ताईन' पढ़ते थे। क़बीला बनू असद 'तअलमूना' की 'ते' को 'ज़ेर' के साथ (तिअलमून) पढ़ता था। मदीने के लोग 'ताबूत' का 'उच्चारण' 'ताबूह' करते थे। क़बीला क़ैस 'काफ़' स्त्रीलिंग का उच्चारण 'शीन' से करते थे। इसी तरह क़बीला तमीम 'अलिफ़ नून' के 'अन'

शब्द को 'ऐन नून' 'अन' के रूप में पढ़ते थे। एक क़बीला 'सीन' अक्षर को 'ते' अक्षर के रूप में अदा करता था और 'अऊज़ू बि रब्बिन्नात मलिकिन्नात इलाहीन्नात' पढ़ता था आदि।

इन हालात में पैग़ंबर के साथी हुज़ैफ़ा बिन यमान की सलाह से तीसरे ख़लीफ़ा उस्मान ने सिद्दीक़ी संस्करण की नक़लें तैयार कराईं और सारे शहरों में इसका एक-एक संस्करण भेज दिया। यह काम दोबारा ज़ैद बिन साबित अंसारी के नेतृत्व में किया गया और उनकी मदद के लिए ग्यारह लोग नियुक्त किए गए। तीसरे ख़लीफ़ा के हुक्म के अनुसार इस कमेटी ने क़ुरआन को क़ुरैश के उच्चारण के अनुसार लिखा, जो कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम का उच्चारण था। इसके बाद आपने हुक्म दिया कि दूसरे संस्करण, जो लोगों ने अपने आप लिखे हैं, वह उनको हुकूमत को सौंप दें। इस तरह उनको जमा करके आग के हवाले कर दिया गया।

इस तरह क़ुरआन को लिखावट यानी लिपि और लेखन के आधार पर एक बना दिया गया, लेकिन स्वाभाविक मतभेद के कारण सारे लोग एक तरह से क़ुरआन को पढ़ने में समर्थ (capable) नहीं हो सकते थे, इसलिए लोगों को आज़ादी दे दी गई कि वे 'सात' तरीक़ों (dialects) में पढ़ सकते हैं। अबू बक्र सिद्दीक़ के क़ुरआन जमा करने का काम पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद की मौत के एक वर्ष बाद पूरा हुआ था, जबकि उस्मान के समय क़ुरआन को क्रमबद्ध करने का काम पैग़ंबर की मौत के 15 वर्ष बाद हुआ।

तीसरी शताब्दी के प्रसिद्ध सूफ़ी और विद्वान हारिस मुहासबी का कथन 'इतक़ान' में सियूती ने अनुकरण किया है—

> "लोगों में मशहूर है कि उस्मान क़ुरआन के संग्रहकर्ता हैं, हालाँकि यह सही नहीं। उन्होंने केवल यह किया कि उन्होंने लोगों को पढ़ने की एक शैली पर जमा कर दिया।"

कुछ लोगों ने उपहास (redicule) और दुश्मनी के तौर पर इस तरह की बातें फैला दीं कि उस्मान ने क़ुरआन में परिवर्तन कर डाले, जैसे— क़ुरआन की आयत 'वक़िफ़ुहूम इन्नहुम मसउलून' (37:24) के आख़िर में 'अन विलायती अली' के शब्द थे, जिन्हें उस्मानी ज़माने में जानबूझकर क़ुरआन से निकाल दिया गया, यहाँ तक कि कुछ लोगों ने यह हास्यपद बात मशहूर कर दी कि 'विलायत' के नाम से एक अलग सूरह क़ुरआन में थी,जिसमें हज़रत मुहम्मद के घरवालों के नाम और उनके अधिकारों आदि का विस्तृत वर्णन था जिसे क़ुरआन

से निकाल दिया गया। इस तरह की बातें बिल्कुल बेबुनियाद हैं। 'इन्ना अलैना जमआहु' (75:17) शिया व सुन्नी, दोनों के निकट सहमतिपूर्ण क़ुरआन की आयत है। फिर क़ुरआन को ईश्वर की किताब मानते हुए कैसे कोई आदमी इस तरह की बेबुनियाद बातों को मान सकता है। प्रसिद्ध शिया धार्मिक विद्वान अल्लामा तबरसी ने लिखा है—

सभी विद्वानों (शिया और सुन्नी दोनों) की सहमति है की क़ुरआन में कोई वृद्धि नहीं हुई। कुछ लोग कहते हैं कि क़ुरआन में कमी हुई है लेकिन वह भी गलत है।

हक़ीक़त यह है कि कभी भी जाँचकर्ताओं ने इस तरह के दावे नहीं किए, बल्कि यह अवसरवादियों के शोशे थे, जो उन्होंने राजनीतिक उद्देश्य के लिए गढ़े थे। हज़रत मुहम्मद के घरवालों की श्रेष्ठता के सारे प्रसंग इसलिए गढ़े गए, ताकि उनके लिए ख़िलाफ़त (सत्ता) का अधिकार साबित हो जाए, जैसे— एक अपरिचित आदमी मुहम्मद बिन जहम अल-हिलाली थे। उन्होंने इमाम जाफ़र सादिक़ की ओर इशारा करके यह बात मशहूर की कि क़ुरआनी आयत 'उम्मतुन हिया अरबा मिन उम्मतिन' (16:92) में परिवर्तन किया गया है। जबकि असल शब्द थे 'अइम्मातुना हिया अज़का मिन अइम्मातिकुम' (तफ़्सीर रूहुलमआनी, मुक़द्दमा) यानी हमारे बनी हाशिम के इमाम व शासक बनी उमैय्या के शासकों से बेहतर हैं।

जैसा कि निवेदन किया गया, उस्मान ने 25 हिजरी में हफ़्सा बिंते-उमर के पास से अबू बक्र सिद्दीक़ का जमा किया हुआ क़ुरआन मँगवाया। उस समय क़ुरआन के लिखने वाले पहले आदमी ज़ैद बिन साबित मौजूद थे। उनके मार्गदर्शन में आपने 12 लोगों का दल नियुक्त किया। उन्होंने सिद्दीक़ी संकलन के आधार पर सात संस्करण तैयार किए। फिर यह संस्करण सभी इस्लामी देशों में भेज दिए गए। उस्मान ने हुक्म दिया कि इसके सिवा जितनी भी कॉपियाँ लोगों ने अपने आप ही लिख ली हैं, वह सब जला दी जाएँ। एक संस्करण उन्होंने राजधानी मदीना में रखा और उसका नाम 'अल-इमाम' रखा और शेष साम्राज्य के हर हिस्से में भेज दिए। मक्का, सीरिया, यमन, बहरीन, बसरा, कूफ़ा में हर जगह पर एक संस्करण भेजा।

यह किताब बाद की शताब्दियों में बहुत अच्छे ढंग से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होती रही, यहाँ तक कि वह प्रेस के दौर में पहुँच गई, जिसके बाद नष्ट होने या परिवर्तन होने का कोई सवाल नहीं। इस शुरुआती संस्करण के साथ बाद

के संस्करणों की समानता का कितना ज़्यादा प्रबंध किया गया है, इसकी दो छोटी-सी मिसाल लीजिए। सूरह मोमिनून की आयत नंबर 108 में 'क़ाला' (अलिफ़ के साथ) लिखा हुआ है और यही शब्द इसी सूरह की अगली आयत नंबर 112 में 'क़ाल' (बग़ैर अलिफ़) लिखा गया है। इस तरह शुरुआती कुरआन में जो शब्द जिस रूप में लिखा हुआ था, ठीक उसी तरह उसको लिखा जाता रहा, चाहे एक ही शब्द दो जगह दो लिपि के साथ क्यों न हो। इसी तरह सूरह क़ियामह की आयत 'व क़ीला मन' के बाद पढ़ने वाला थोड़ी देर विराम के लिए ठहरता है, फिर 'राक़' पढ़ता है। इसका कारण केवल यह है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने इस मौक़े पर हल्का-सा विराम किया था। क़ुरआन में इस तरह के दूसरे अनेक स्थान हैं, मगर कभी क़ुरआन पढ़ने वालों को यह विचार नहीं आया कि अपने आप दूसरे स्थानों पर भी इसी तरह विराम देकर पढ़ना शुरू कर दें।

आज जो क़ुरआन मुसलमानों में प्रचलित है, उसकी प्रामाणिकता में किसी वर्ग का कोई मतभेद नही, यहाँ तक कि शिया जाँचकर्ता विद्वान भी इस मामले में सहमत हैं। किताब 'तारीख़ुल क़ुरआन लि-अबी अब्दुल्ला अज़्ज़नजानी शीयी' (पेज नं० 46) में अनुकरण किया गया है कि अली बिन मूसा अल-मारूफ़ इब्ने-ताऊस (589-664 हिजरी), जो शिया जाँचकर्ता विद्वानों में से हैं, उन्होंने अपनी किताब 'सादुस्सऊद' में शहरिस्तानी से अनुकरण किया है—

"वह कहते हैं कि मैंने हज़रत अली बिन अबी तालिब को यह कहते हुए सुना कि ऐ लोगो ! ईश्वर से डरो ! उस्मान के मामले में हद से न गुज़रो (exaggeration)। यह न कहो कि उन्होंने क़ुरआन को जलाया। ईश्वर की सौगंध ! उन्होंने नहीं जलाया, लेकिन उस समय उन्होंने पैग़ंबर के साथियों के एक दल को इकट्ठा किया था और पूछा था कि तुम क़ुरआन को पढ़ने के मतभेद के बारे में क्या कहते हो। एक आदमी दूसरे आदमी से मिलता है और कहता है कि मेरा पढ़ना तुम्हारे पढ़ने से बेहतर है। इस तरह की बात कुफ़्र तक जाती है। साथियों ने कहा कि आपकी क्या राय है? उन्होंने कहा कि मैं चाहता हूँ कि सभी लोगों को एक किताब पर इकट्ठा कर दूँ, क्योंकि तुम अगर आज मतभेद में पड़ गए तो तुम्हारे बाद के लोग और ज़्यादा मतभेद में पड़ेंगे। पैग़ंबर के सभी साथियों ने कहा कि हाँ, आपकी राय से हम सहमत हैं।''

क़ुरआन की यह एक ऐसी विशेषता है, जिसे दुश्मनों तक ने स्वीकार किया

है। सर विलियम म्योर लिखते हैं—

"मुहम्मद की मौत के चौथाई शताब्दी के बाद ही ऐसे विवाद और गुटबंदियाँ हो गईं, जिसके परिणामस्वरूप उस्मान को क़त्ल कर दिया गया और यह मतभेद आज भी बाक़ी हैं, मगर इन सब वर्गों का क़ुरआन एक ही है। हर ज़माने में समान रूप से सब वर्गों का एक ही क़ुरआन पढ़ना इस बात का रद्द न होने वाला सबूत है कि आज हमारे सामने वही किताब है, जो उस बदक़िस्मत ख़लीफ़ा उस्मान के हुक्म से तैयार की गई थी। शायद पूरी दुनिया में दूसरी ऐसी कोई किताब नहीं है, जिसके शब्द (text) बारह शताब्दियों तक उसी तरह बिना किसी परिवर्तन के बाक़ी हों।''

(*Life of Mohammad*, 1912)

लेनपूल ने इस हक़ीक़त को इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"क़ुरआन की बड़ी ख़ूबी यह है कि उसकी असलियत में कोई संदेह नहीं। हर अक्षर जो हम आज पढ़ते हैं, उस पर यह भरोसा कर सकते हैं कि लगभग तेरह शताब्दियों से अपरिवर्तित रहा है।"

(*Selection from the Quran*)

जर्मन खोजकर्ता वॉन हेम ग़ैर-मुस्लिम मुस्तशरिक़ीन (rientalists) का व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

"हम क़ुरआन को मुहम्मद का कथन उसी तरह मानते हैं, जिस तरह मुसलमान उसे ख़ुदा का कथन मानते हैं।" (ऐजाज़-उत-तनज़ील, पे नं० 500)

उस्मानी ज़माने तक क़ुरआन के जितने संस्करण लिखे गए, वह सब हैरी लिपि में थे। चौथे ख़लीफ़ा अली के ज़माने में लिपि में सुधार हुआ और कूफ़ी लिपि अस्तित्व में आई, जो पिछली लिपि का उन्नत रूप थी। अली के ख़ास सहयोगी अबुल असवद अद्दौली (69 हिजरी) ने पहली बार इस लिपि को बनाया और फिर बनी उमैय्या के ज़माने में उसकी और अधिक उन्नति हुई। क़ुरआन में मात्राएँ लगाने की शुरुआत भी अबुल असवद अद्दौली ने चौथे ख़लीफा अली के ज़माने में की। इसी की बुनियाद पर हज्जाज बिन यूसुफ़ ने बाद में क़ुरआन के नियमानुसार मात्राएँ लगे हुए संस्करण तैयार कराए। आज तक क़ुरआन ठीक उसी शैली में लिखा जा रहा है।

क़ुरआन एक सुरक्षित किताब

"हमने क़ुरआन को उतारा है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।" (क़ुरआन, 15:9)

एक लिपिक महोदय को एक किताब का मसौदा (draft) लिखने के लिए दिया गया। इस मसौदे में एक जगह हदीस के विद्वान अबू दुआद का नाम था। लिपिक महोदय अबू दुआद से परिचित न थे, हालाँकि वह अबू दाऊद को जानते थे। इसलिए उन्होंने अबू दुआद की जगह अबू दाऊद लिख दिया।

इस तरह की ग़लतियों के उदाहरण बहुत आम हैं। एक आदमी किसी लेख को पढ़ रहा है या उसे नक़ल कर रहा है। इसी बीच एक ऐसा वाक्य आता है, जिसे वह समझ नहीं पाता। इसलिए वह उसे अपनी समझ के अनुसार बदलकर कुछ से कुछ कर देता है, यहाँ तक कि ऐसे भी लोग हैं, जो किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के तहत मूल लेख में जानबूझकर परिवर्तन करते हैं और अपनी ओर से उसमें ऐसी बातें शामिल कर देते हैं, जो असल किताब में उसके लेखक ने शामिल न की थीं।

पिछली आसमानी किताबों में जो परिवर्तन हुए हैं, उनका कारण इंसान की यही कमज़ोरी है। क़ुरआन में यह वर्णन है कि ईश्वर ने ज़मीन और आसमान को छह दिनों में पैदा किया है। यही बात बाइबल में इस तरह है कि छह दिनों का अलग-अलग विवरण है। हर दिन की उत्पत्तियों का वर्णन करने के बाद उसमें यह वाक्य मिलता है— "और शाम हुई और सुबह हुई।" यह वाक्य निश्चित रूप से कथित ऊपरी विचार के तहत इंसान द्वारा की गई वृद्धि है। किसी महापुरुष ने अपने आप ही बाइबल के वाक्य को पूर्ण करने के लिए यह शब्द बढ़ा दिए। क़ुरआन के शब्दों में यह गुंजाइश है कि दिन को दौर (period) के अर्थ में ले सके, लेकिन बाइबल में कथित वाक्य की वृद्धि ने उसे दौर के अर्थ में लेना असंभव बना दिया।

बाइबल में इस तरह के उदाहरण बहुत हैं, यहाँ तक कि कुछ उदाहरण बहुत

ही बेकार हैं, जैसे— क़ुरआन में वर्णन है कि मूसा को ईश्वर ने यह चमत्कार दिया कि वे अपना हाथ निकालें तो वह चमकने लगे, बाइबल में उसका वर्णन है मगर वहाँ यह शब्द लिखे हुए हैं—

> "फिर ईश्वर ने मूसा से कहा कि तू अपना हाथ अपने सीने पर रखकर ढक ले। उसने अपना हाथ अपने सीने पर रखकर ढक लिया और जब उसने उसे निकालकर देखा तो उसका हाथ कोढ़ से बर्फ़ की तरह सफ़ेद था।" (बाइबिल, ख़ुरूज 4:6)

बाइबल के इस वाक्य में 'कोढ़ से' निश्चित रूप से बाद के लोगों की व्याख्यात्मक वृद्धि है। क़ुरआन के शब्दों के अनुसार, मूसा के हाथ का चमकना ईश्वरीय कारण से मालूम होता है और बाइबल के शब्दों के अनुसार रोग के कारण।

क़ुरआन सभी आसमानी किताबों में अकेली वह किताब है, जिसमें किसी भी तरह का फेरबदल न हो सका। इसका कारण यह है कि पिछली आसमानी किताबों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ख़ुद उन किताबों के वाहक इंसानों पर डाली गई थी, इसलिए क़ुरआन में उनके लिए 'इस्तेहफ़ाज़' का शब्द आया है यानी (इंसानों से) हिफ़ाज़त चाहना। इसके विपरीत क़ुरआन के बारे में 'हाफ़िज़' का शब्द आया है यानी (ईश्वर) हिफ़ाज़त करने वाला।

क़ुरआन में ऐसे बहुत से अवसर थे, जहाँ क़ुरआन के मानने के लिए गुंजाइश थी, कि वे उसमें कथित उपरोक्त प्रकार के परिवर्तन कर डालें। इसके उदाहरण बड़ी संख्या में मौजूद हैं, कि उन्होंने व्यवहारत: ऐसा किया भी; मगर उन्होंने जो कुछ किया, वह फुटनोट की हद तक सीमित रहा। 'मूल लेख' (text) में वे किसी तरह का कोई परिवर्तन न कर सके। फुटनोट और व्याख्या में चूँकि उनके हाथ बँधे हुए न थे, इसलिए उसमें उन्होंने तरह-तरह के अबोध (ignorant) परिवर्तन कर दिए, लेकिन जहाँ तक असल किताब का संबंध है, उसे ईश्वर ने सीधे तौर पर अपनी निगरानी में ले रखा था, इसलिए यहाँ वे किसी तरह का फेरबदल करने में असमर्थ रहे।

इस मौक़े पर स्पष्टता के लिए हम दो उदाहरण देते हैं। क़ुरआन की पहली अवतरित आयत है— "इक़रा बिस्मी रब्बी कल्लज़ी ख़लक़" यानी "पढ़ अपने रब के नाम से, जिसने पैदा किया।" इसी तरह दूसरी जगह पर है— "सनुक़्रिउका फ़ला तनसा" यानी "हम तुझको पढ़ा देंगे, फिर तू न भूलेगा।" इन आयात

में 'इक़रा' और 'सनुक़रि' के शब्दों से ऐसा मालूम होता है कि आपके सामने कोई किताब या कोई लिखी हुई चीज़ रखी गई और कहा गया कि इसको पढ़ो।

यह बात मुसलमानों की आम आस्था के बिल्कुल ख़िलाफ़ है, क्योंकि सारी दुनिया के मुसलमानों का यह यक़ीन है कि हज़रत मुहम्मद पढ़े-लिखे नहीं थे। जैसे आयत के यह शब्द अपने प्रत्यक्ष की दृष्टि से मुसलमानों की आस्था में रुकावट हैं और इस्लाम के विरोधियों को अनावश्यक रूप से यह कहने का अवसर देते हैं कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद अनपढ़ नहीं थे, बल्कि पढ़े-लिखे थे। इसके बावजूद ऐसा नहीं हुआ कि दूसरी किताबों के मूल पाठ की तरह मुसलमान क़ुरआन के इन शब्दों को बदल दें। यह क़ुरआन के सुरक्षित किताब होने का एक स्पष्ट अंदरूनी सबूत है, वरना अगर दूसरी किताब की तरह मामला होता तो क़ुरआन में हमें 'इक़रा' (पढ़) के स्थान पर 'उतलू' (तू पढ़) का 'तलफ़्फ़ुज़' (उच्चारण) लिखा हुआ मिलता। इसी तरह लिखने वालों ने 'सनुक़रि-उका' के बजाय 'सनहफ़िज़ुका' मतलब 'हम तुझे याद करा देंगे' लिख दिया होता।

इसी तरह एक उदाहरण सूरह क़ियामह की आयत 'वक़ीला मन राक़' मतलब 'और कहा जाएगा कि है कोई झाड़-फूँक वाला है।' सारी दुनिया के मुसलमान जब इस आयत को पढ़ते हैं तो वे 'मन' पर ठहरते हैं यानी मन के बाद थोड़ा रुककर 'राक़' कहते हैं। इसका कारण यह है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम से सुनने वाले पैग़ंबर के साथियों ने बयान किया कि आपने जब यह आयत पढ़ी तो आप अक्षर 'मन' पर रुके, वरना व्याकरण की कला की दृष्टि से इसका कोई भी कारण नहीं है कि यहाँ यह विराम क्यों किया जाए। अगर क़ुरआन के साथ इसके वाहक वह मामला कर सकते, जो दूसरी किताबों के साथ उनके वाहकों ने किया तो अनिवार्य रूप से ऐसा होता कि यह विराम बाक़ी न रहता। ऐसी स्थिति में मुसलमान इसे 'वक़ीला मनराक़' पढ़ते, न कि 'वक़ीला मन (विराम) राक़'।

इसी तरह क़ुरआन में है— "या अय्युहन्नबी इज़ा तल्लक़तुमुन-निसाअ।" मतलब "ऐ पैग़ंबर ! जब तुम सब लोग औरतों को तलाक़ दो।" यह वाक्य व्याकरण के सामान्य नियम के विरुद्ध है। इसमें एक से संबोधन करके समूह की संज्ञा लाई गई है। आम लिखने और बोलने वाले कभी ऐसा नहीं करते। अगर क़ुरआन का वह मामला होता, जो दूसरी आसमानी किताबों का है तो निश्चित रूप से ऐसा होता कि कुछ मुसलमान इस आयत के शब्दों को बदलकर इस तरह लिख चुके होते— "या अय्युहन्नबीयु इज़ा तल्लक़ता अन निसाअ" (ऐ नबी

जब तू अपनी औरतों को तलाक़ दे) या "अय्युहर्रुसुलु इज़्ा तल्लक़्तुमुन-निसाअ।" (ऐ पैग़ंबरों! जब तुम सब लोग अपनी औरतों को तलाक़ दो)।

यही मामला लेखन-शैली का है। अरबी सुलेखकला (calligraphy) ने बाद के ज़माने में बहुत तरक़्क़ी की, जबकि क़ुरआन उस समय लिखा गया, जब सुलेखकला ने अभी इतनी तरक़्क़ी नहीं की थी। इसलिए क़ुरआन की लेखन-शैली में और आम सुलेखकला में कुछ जगह अंतर है। जैसे— क़ुरआन में 'मालिकि' को 'मलिक' लिखा हुआ है (1:4), यहाँ तक कि इस लेखन-शैली के कारण आयत के दो उच्चारण बन गए हैं। कोई उसे 'मालिकि' पढ़ता है तो कोई 'मलिकि' पढ़ता है। इसके बावजूद किसी के लिए यह मुमकिन नहीं हुआ कि उस शब्द को 'मालिकि' बना दे।

क़ुरआन के फ़ुटनोट (footnote) में बाद के लोगों ने जो आंतरिक परिवर्तन किए हैं, उनमें से एक उदाहरण क़ुरआन की यह आयत है— "मैं ज़मीन पर एक ख़लीफ़ा बनाने वाला हूँ।" बाद में अनेक व्याख्याकारों ने इस आयत में ख़लीफ़ा शब्द को 'ख़लीफ़ातुल्लाह' यानी 'अल्लाह का उत्तराधिकारी' के समानार्थ बना दिया और इसकी व्याख्या इन शब्दों में की है— "ईश्वर ने फ़रिश्तों से कहा कि मैं ज़मीन पर अपना एक ख़लीफ़ा नियुक्त करने वाला हूँ।" हालाँकि 'अपना' का शब्द यहाँ सरासर वृद्धि है। उन लोगों ने फ़ुटनोट में तो इस तरह की वृद्धि ख़ूब की, लेकिन मूल लेख में वृद्धि करना उनके लिए संभव न हो सका। अगर क़ुरआन के मूल पाठ पर ईश्वर का पहरा न होता तो संभवत: वे आयत के शब्दों को नाकाफ़ी समझकर उसे इस तरह लिख देते—

"इन्नी जाइलुन फ़िल अर्ज़ी ख़लीफ़ती या इन्नी जाइलुन फ़िल अर्ज़ी ख़लीफ़तम मिन्नी।"

दूसरी आसमानी किताबों में से हर किताब में यह हुआ है कि उन किताबों के मानने वाले अपने तौर पर जो कुछ चाहते थे, वह सब उन्होंने ईश्वर की किताब में कहीं-न-कहीं दाख़िल कर दिया। उदाहरण के लिए— यूहन्ना की मौजूदा बाइबल में हमें यह वाक्य मिलता है, "दूसरे दिन उसने यीशु को अपनी ओर आते देखकर कहा कि देखो यह ईश्वर का बर्रा (मेमना) है, जो दुनिया के गुनाह उठा ले जाता है। यह वही है, जिसके बारे में मैंने कहा था कि एक आदमी मेरे बाद आएगा, जो मुझसे श्रेष्ठ है, क्योंकि वह मुझसे पहले था।" (यूहन्ना, अध्याय 1, 35:36)

यूहन्ना की बाइबल का यह वाक्य पैग़ंबर याह्या की ज़ुबान से यीशु

मसीह के बारे में है। याह्या का यह वक्तव्य बाक़ी तीनों बाइबल में भी है, मगर उनमें 'जो दुनिया का गुनाह उठा ले जाता है' मौजूद नहीं। ये शब्द निश्चित रूप से बाद में मूल वक्तव्य में इसलिए बढ़ाए गए हैं, ताकि उनसे प्रायश्चित्त की आस्था निकाली जा सके। बाद के ईसाइयों की पसंदीदा आस्था प्रायश्चित्त को बाइबल से साबित करने के लिए याह्या के कथित वक्तव्य में यह वाक्य बढ़ा दिया गया। हालाँकि अगर वह याह्या का वाक्य होता तो वह चारों बाइबल में मौजूद होता।

यही बात क़ुरआन में भी हो सकती थी, मगर हम देखते हैं कि मुसलमानों की बहुत-सी पसंदीदा आस्थाएँ भी क़ुरआन के मूल पाठ के अंदर मौजूद नहीं। उदाहरण के लिए— हज़रत मुहम्मद का सभी पैग़ंबरों से बेहतर होना और ईश्वर के यहाँ आपका गुनाहगारों का सिफ़ारिशी होना मुसलमानों की पसंदीदा आस्थाएँ है, लेकिन क़ुरआन में किसी जगह पर वह स्पष्ट रूप से मौजूद नहीं है। मुसलमान यह तो कर सके कि अपनी इन आस्थाओं को साबित करने के लिए कुछ आयतों से नतीजे के तौर पर अर्थ निकाले, लेकिन वे उनको क़ुरआन के मूल पाठ में शामिल न कर सके। अगर मुसलमानों को मूल पाठ में रद्दोबदल की ताक़त हासिल होती तो निश्चित ही आज हम क़ुरआन में कोई ऐसी आयत पढ़ते, जिसके शब्द यह होते— "ऐ मुहम्मद ! तुम सारे नबियों में श्रेष्ठ हो और क़यामत के दिन तुम गुनाहगारों की सिफ़ारिश करोगे।"

यह कुछ साधारण प्रकार के आंतरिक उदाहरण हैं, जिनसे यह साबित होता है कि क़ुरआन आज भी उस शुरुआती हालत में मौजूद है, जिस हालत में पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद ने उसे अपने ज़माने में लिखवाया था। उसमें किसी तरह का हल्का-सा भी परिवर्तन न हो सका।

अब स्पष्ट है कि क़ुरआन जब केवल आसमानी किताब है, जिसका मूल पाठ पूरी तरह सुरक्षित है तो उसी का हक़ है कि वह उन लोगों के लिए अकेली मार्गदर्शक किताब बने, जो ईश्वरीय वाणी को मानते हैं और ईश्वर के मार्गदर्शन के अनुसार ज़िंदगी गुज़ारना चाहते हैं। सुरक्षित और असुरक्षित, दोनों तरह की किताबों की मौजूदगी में निश्चित रूप से सुरक्षित किताब की पैरवी की जाएगी, न कि असुरक्षित और परिवर्तित किताब की।

ईश्वरीय प्रबंधन

यहूदियों को ईश्वर की ओर से हुक्म दिया गया था कि वे 'तौरात' की सुरक्षा करें(सूरह अल-माइदा)। इसके विपरीत क़ुरआन के बारे में कहा गया है—

"हमने क़ुरआन को उतारा है और हम ही इसके रक्षक हैं।" (15:9)

इससे पता चलता है कि पिछली आसमानी किताबों को सुरक्षित रखने की ज़िम्मेदारी उनकी क़ौमों पर डाली गई थी, जबकि क़ुरआन को सुरक्षित रखने की ज़िम्मेदारी ख़ुद ईश्वर ने ली है। पिछली आसमानी किताबें भी इसी तरह ईश्वर की किताबें थीं, जिस तरह क़ुरआन ईश्वर की किताब है, लेकिन फ़र्क़ यह है कि पिछली आसमानी किताबों के वाहक उन किताबों की सुरक्षा के बारे में अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा न कर सके। यह किताबें अपने मूल रूप में बाक़ी न रहीं, लेकिन क़ुरआन की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ईश्वर ने ख़ुद ली थी, इसलिए क़ुरआन ईश्वर की विशिष्ट सहायता से पूरी तरह सुरक्षित रहा।

इसका मतलब यह नहीं है कि आसमान से ईश्वर के फ़रिश्ते उतरेंगे और वे क़ुरआन को अपने साये में लिये रहेंगे। मौजूदा दुनिया इम्तिहान की दुनिया है। यहाँ परलोक की हक़ीक़तों को अदृश्य (invisible) रखा गया है, इसलिए यहाँ कभी ऐसा नहीं हो सकता कि फ़रिश्ते सामने आकर क़ुरआन की रक्षा करने लगें। मौजूदा दुनिया में इस तरह का काम हमेशा सामान्य हालात में किया जाता है, न कि असामान्य हालात में। यहाँ क़ुरआन की सुरक्षा का काम ऐतिहासिक साधनों और चलते-फिरते इंसानों के ज़रिये लिया जाएगा, ताकि ग़ैब (unseen) का पर्दा बाक़ी रहे। घटनाओं से पता चलता है कि ईश्वर ने अपने वादे को पूरे इतिहास में उच्चतम स्तर पर अंजाम दिया है। इस उद्देश्य के लिए उसने विभिन्न क़ौमों से मदद ली है और इस काम में मुसलमानों को भी इस्तेमाल किया है और ग़ैर-मुस्लिमों को भी।

पिछले पैग़ंबरों के साथ यह घटना घटी कि उनको ऐसे बहुत कम साथी

मिले, जो उनके बाद उनकी किताब की सुरक्षा की पक्की गारंटी बन सकते, लेकिन पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद का मामला मुख्य रूप से दूसरे पैग़ंबरों से अलग है। मृत्यु से लगभग ढाई महीने पहले आपने हज किया, जिसे 'हज्जतुल विदा' कहा जाता है। इस मौक़े पर 'अरफ़ात' के मैदान में एक लाख चालीस हज़ार मुसलमान मौजूद थे। इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम के अंतिम समय तक आप पर ईमान लाने वाले मर्दों और औरतों की कुल संख्या कम-से-कम 5,00,000 हो चुकी होगी। यह संख्या प्राचीन इंसानी आबादी की दृष्टि से बहुत असाधारण है। आपके बाद यह संख्या बढ़ती रही, यहाँ तक कि देश-के-देश मुसलमान होते चले गए। इस तरह क़ुरआन की सुरक्षा के लिए इतना बड़ा इंसानी गिरोह इकट्ठा कर दिया गया, जो इससे पहले किसी आसमानी किताब की सुरक्षा के लिए इकट्ठा नहीं हुआ था।

इसके बाद दूसरी सहायक घटना यह घटी कि अरब में और अरब के बाहर मुसलमानों की जीत का सिलसिला शुरू हुआ। यह सिलसिला यहाँ तक फैला कि प्राचीन आबाद दुनिया के अधिकतर हिस्सों पर मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया और उन्होंने दुनिया का सबसे बड़ा और शक्तिशाली साम्राज्य (empire) स्थापित किया। यह साम्राज्य किसी ताक़त से पराजित हुए बिना निरंतर स्थापित रहा और क़ुरआन की सुरक्षा करता रहा। यह सिलसिला 1,000 वर्ष तक जारी रहा, यहाँ तक कि प्रेस का दौर आ गया और क़ुरआन के नष्ट होने की संभावना सिरे से ख़त्म हो गई।

प्रेस के दौर में यह संभव हो गया कि किसी किताब का एक संस्करण लिखा जाए और उसे छापकर एक ही तरह की करोड़ों प्रतियाँ तैयार कर ली जाएँ, लेकिन पहले ऐसा संभव नहीं था। पुराने ज़माने में किताब की हर प्रति अलग-अलग हाथ से लिखी जाती थी। इस कारण अक्सर एक प्रति और दूसरी प्रति में कुछ-न-कुछ अंतर हो जाता था। इसलिए पुरानी किताबों में से जो भी किताब आज दुनिया में पाई जाती है, उसकी हस्तलिखित (manuscripts) प्रतियों में से कोई भी दो प्रतियाँ ऐसी नहीं, जिनमें अंतर न हो। यह केवल क़ुरआन ही है, जिसकी लाखों प्रतियाँ हाथ से लिखकर तैयार की गईं और उनकी बड़ी संख्या आज भी संग्रहालयों और पुस्तकालयों (museums and

libraries) में मौजूद है, लेकिन एक हस्तलिखित प्रति और दूसरी हस्तलिखित प्रति में थोड़ा-सा भी अंतर नहीं पाया जाता। यह ईश्वर की ख़ास मदद थी, जिसने क़ुरआन के बारे में मुसलमानों को इतना ज़्यादा सतर्क और संवेदनशील (alert and sensitive) बना दिया।

इसी के साथ ईश्वर ने यह इंतज़ाम किया कि क़ुरआन को याद (रटकर उसके मूल पाठ को याद करना) करने का अनोखा तरीक़ा शुरू हुआ, जो इससे पहले के ज्ञात इतिहास में कभी किसी किताब के लिए नहीं किया गया था। हज़ारों-लाखों लोगों के दिल में यह भावना उभरी कि वे क़ुरआन के मूल पाठ को शुरू से आख़िर तक याद करें और याद रखें। इस तरह के लोग इतिहास के हर दौर में हज़ारों की संख्या में पैदा होते रहे। यह सिलसिला क़ुरआन के ज़माने से शुरू होकर आज तक जारी है। ज्ञात इतिहास के अनुसार दुनिया में ऐसी कोई भी दूसरी किताब नहीं है, जिसके मानने वालों ने इस तरह किसी किताब को याद करने का इंतज़ाम किया हो, जिस तरह क़ुरआन के मानने वाले हर दौर में करते रहे हैं। क़ुरआन को याद करने के रिवाज ने उसकी सुरक्षा के इस अनोखे इंतज़ाम को संभव बना दिया, जिसे एक फ्रांसीसी विद्वान मोरिस बुकाई ने दोहरी जाँच (double checking) का तरीक़ा कहा है यानी एक लिखी हुई प्रति को दूसरी लिखी हुई प्रति से मिलाना और इसी के साथ याददाश्त की मदद से उसकी प्रामाणिकता को जाँचते रहना।

डेढ़ हज़ार वर्ष के इस्लामी इतिहास में यह जो कुछ हुआ, ईश्वर की तरफ़ से हुआ। इम्तिहान के हालात को बनाए रखने के लिए हालाँकि इसे साधन के पर्दे में अंजाम दिया गया है, लेकिन जब क़यामत आएगी और सारी हक़ीक़तें ज़ाहिर कर दी जाएँगी, उस समय लोग देखेंगे कि अरब की इस्लामी क्रांति से लेकर प्रेस-युग के नए सुरक्षात्मक तरीक़ों तक सारे काम ईश्वर ही ख़ुद प्रत्यक्ष रूप से अंजाम देता था। हालाँकि देखने में वह कुछ हाथों को उसका ज़रिया बनाता रहा।

क़ुरआन के बारे में ईश्वर के इस ख़ास इंतज़ाम का एक और अहम पहलू है, जिसका संबंध ख़ास तौर पर मुसलमानों से है। क़ुरआन के शब्दों की सुरक्षा, जो मुसलमानों के हाथों हो रही है, यही दरअसल वह चीज़ नहीं है, जो क़ुरआन के सिलसिले में ईश्वर को हमसे वांछित हो। यह काम तो ख़ुद सीधे ईश्वर के इंतज़ाम

में हो रहा है, फिर हमारा इसमें क्या कमाल! जो लोग इस सुरक्षा के काम में व्यस्त हैं, वे अपनी ईमानदारी के अनुसार मुआवज़ा (compensation) पाएँगे, लेकिन यही मुसलमानों की असल ज़िम्मेदारी नहीं है। यह काम चाहे कितना ही ईमानदारी से और कितने ही बड़े पैमाने पर किया जाए, इससे हमारी असल ज़िम्मेदारी ख़त्म नहीं हो सकती।

हक़ीक़त यह है कि पिछली क़ौमों का इम्तिहान मूल पाठ की सुरक्षा में था, मुसलमानों का इम्तिहान अर्थ की सुरक्षा में है। पिछले ज़माने में जो लोग ईश्वरीय किताब के वाहक बनाए गए, उनकी परीक्षा अर्थ की सुरक्षा के साथ-साथ समान रूप से मूल पाठ की सुरक्षा में भी थी, लेकिन मुसलमानों की परीक्षा सबसे बढ़कर अर्थ की सुरक्षा में है। मुसलमानों को क़ुरआन के सिलसिले में जिस चीज़ का सबूत देना है, वह यह है कि क़ुरआन की व्याख्या और विस्तार में अंतर न करें। क़ुरआन में जिस चीज़ को जिस दर्जे में रखा गया है, उसे उसी दर्जे में रखें। वे क़ुरआन के उद्देश्य में कोई व्याख्यात्मक परिवर्तन न करें। क़ुरआन को दूसरों के सामने पेश करते हुए वे उसी असल बात को पेश करें, जो क़ुरआन में अरबी भाषा में उतारी गई है, न कि ख़ुद बनाई व्याख्याओं के द्वारा एक नया मज़हब बनाएँ और उसे क़ुरआन के नाम पर लोगों के सामने पेश करने लगें।

मुसलमानों का क़ुरआन का वाहक बनने में नाकाम होना यह है कि वे क़ुरआन को सौभाग्य और पुण्यफल की किताब बना दें और अपने मज़हब की गाड़ी व्यावहारिक रूप से दूसरी बुनियादों पर चलाने लगें। कोई मसाइल* के नाम पर गतिविधि करने लगे और कोई धार्मिक विशेषताओं के नाम पर— कोई महापुरुषों के उपदेशों और कहानियों को मज़हब की बुनियाद बना ले और कोई सभाओं व भाषणों की धूम मचाने को। कोई क़ुरआन को अपने राजनीतिक आंदोलन का परिशिष्ट (appendix) बना ले और कोई अपने क़ौमी हंगामों का। क़ुरआन के नाम पर इस तरह की गतिविधियाँ क़ुरआन के अर्थ में परिवर्तन का दर्जा रखती हैं। मुसलमान अगर क़ुरआन के अर्थ के साथ इस तरह का मामला कर रहे हों तो वे केवल इस आधार पर ईश्वर की पकड़ से नहीं बच सकते कि क़ुरआन के शब्दों की सुरक्षा और दोहराने में उन्होंने कोई कमी नहीं की थी।

---

* इस्लामी धर्मशास्त्र संबंधी आदेश,पेचीदा मामले, समस्याएँ।

इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि ईश्वरीय किताब की वाहक दूसरी क़ौमों को जो सज़ा किताब के मूल पाठ के परिवर्तन पर दी गई, वह सज़ा मुसलमानों को किताब के अर्थ के परिवर्तन पर मिलेगी। मुसलमानों का असल इम्तिहान जहाँ हो रहा है, वह यही है। अगर वे ईश्वर की किताब के अर्थों को ख़ुद बनाई गई व्याख्याओं से बदल डालें तो वे केवल इसलिए ईश्वर की पकड़ से नहीं बच सकते कि उन्होंने किताब के मूल पाठ में कोई परिवर्तन नहीं किया था, क्योंकि इम्तिहान आदमी के अधिकार के दायरे में होता है और मुसलमानों को जहाँ अधिकार प्राप्त है, वह क़ुरआन के अर्थ में परिवर्तन है, न कि क़ुरआन के मूल पाठ में परिवर्तन। क़ुरआन के मूल पाठ में परिवर्तन से तो ईश्वर ने सारी क़ौमों को असमर्थ कर रखा है, फिर वहाँ किसी का इम्तिहान किस तरह होगा।

ईश्वर की योजनाबंदी

“और हमने तुम्हारे ऊपर क़ुरआन उतारा, बयान करने वाली हर चीज़ का और मार्गदर्शक व कृपा।” (क़ुरआन, 16:89)

आदम पहले इंसान थे और इसी के साथ पहले पैग़ंबर भी। कुछ रिवायात के अनुसार आदम के बाद लगभग एक हज़ार वर्ष तक आपकी नस्ल एकेश्वरवाद और सत्य धर्म का पालन करती रही। उसके बाद -आदम की नस्ल में अनेकेश्वरवाद का चलन हो गया (2:213)। नूह इसी समुदाय के लोगों के सुधार के लिए आए, जो उस समय मेसोपोटामिया* के हरे-भरे इलाक़े में आबाद थे। नूह की लंबी कोशिशों के बाद भी आदम के अनुयायी दोबारा अनेकेश्वरवादी धर्म छोड़ने को तैयार नहीं हुए। उनमें से केवल कुछ लोग थे, जो नूह पर ईमान लाए। इसलिए एक बड़ा भयंकर तूफ़ान आया और कुछ ईमान वालों को छोड़कर सभी लोगों को डुबो दिया गया। इसके बाद नूह के अनुयायियों द्वारा दोबारा इंसानी नस्ल चली, लेकिन दोबारा वही क़िस्सा सामने आया, जो इससे पहले सामने आ चुका था। कुछ समय बाद ज़्यादातर लोग एकेश्वरवादी धर्म को छोड़कर अनेकेश्वरवादी धर्म पर चल पड़े। यही क़िस्सा हज़ारों वर्षों तक बार-बार सामने आता रहा। ईश्वर ने लगातार पैग़ंबर भेजे (क़ुरआन, 23:44), लेकिन इंसान उनसे कोई सीख हासिल करने के लिए तैयार न हुआ, यहाँ तक कि सारे पैग़ंबरों को मज़ाक़ का विषय बना लिया गया (क़ुरआन, 36:30)।

यह सिलसिला हज़ारों वर्षों तक जारी रहा यहाँ तक कि इतिहास में अनेकेश्वरवाद की निरंतरता स्थापित हो गई। उस ज़माने के इंसानी समाज में जो भी आदमी पैदा होता, वह अपने माहौल की हर चीज़ से अनेकेश्वरवाद की सीख ले लेता। धार्मिक रस्म-रिवाजों, सामाजिक समारोहों, क़ौमी मेलों और शासन

---

* प्राचीन सभ्यता जो टाइग्रिस और यूफ्रेटिस नदी के बीच मौजूदा इराक़ और कुवैत के हिस्से में 3500-1500 ई० में आबाद थी।

की व्यवस्था तक हर चीज़ अनेकेश्वरवादी आस्थाओं पर स्थापित हो गई। ऐसी स्थिति हो गई कि जो भी इंसान पैदा हो, वह अनेकेश्वरवाद के माहौल में आँख खोले और अनेकेश्वरवाद के ही माहौल में उसका अंत हो जाए। इसी चीज़ को मैंने इतिहास में अनेकेश्वरवाद की निरंतरता स्थापित हो जाने से स्पष्ट किया है और यही वह हक़ीक़त है, जो नूह की दुआ में इन शब्दों में मिलती है—

"और इनकी नस्ल से जो भी पैदा होगा, वह दुष्कर्मी और अवज्ञाकारी ही होगा।" (क़ुरआन, 71:27)

अब इतिहास इब्राहीम तक पहुँच चुका था, जिनका ज़माना 2100 वर्ष ईसा पूर्व है। ख़ुद इब्राहीम ने प्राचीन इराक़ में जो सुधारवादी प्रयास किए, उनका भी वही अंजाम हुआ, जो आपसे पहले दूसरे पैग़ंबरों का हुआ था। उस समय ईश्वर ने इंसान के मार्गदर्शन के लिए नई योजना बनाई। वह योजना यह थी कि विशिष्ट प्रबंध के द्वारा एक ऐसी नस्ल तैयार की जाए, जो अनेकेश्वरवाद की निरंतरता से अलग होकर परवरिश पाए। अपने प्राकृतिक हालात पर स्थापित रहने के कारण उसके लिए एकेश्वरवाद को स्वीकार करना आसान हो जाए, फिर उसी गिरोह को इस उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाए कि वह इतिहास में जारी होने वाली अनेकेश्वरवाद की निरंतरता को तोड़े।

उस समय इब्राहीम को हुक्म हुआ कि वह इराक़, सीरिया, मिस्र और फ़िलिस्तीन जैसे आबाद इलाक़ों को छोड़कर प्राचीन मक्का के ग़ैर-आबाद इलाक़े में जाएँ और वहाँ अपनी पत्नी हाजरा और दूध पीते बच्चे इस्माईल को बसा दें। यह इलाक़ा बंजर घाटी वाला होने के कारण उस ज़माने में बिल्कुल ग़ैर-आबाद था। इस आधार पर वह प्राचीन अनेकेश्वरवादी सभ्यता से पूरी तरह मुक्त था। इब्राहीम की दुआ— "तेरे सम्मानित घर के पास" (क़ुरआन, 14:37) यानी एक ऐसी जगह, जो अनेकेश्वरवाद की पहुँच से दूर हो। इब्राहीम की इस दुआ का मतलब यह था, कि हे ईश्वर ! मैंने अपनी संतान को एक बिल्कुल ग़ैर-आबाद इलाक़े में बसा दिया है, जहाँ अनेकेश्वरवादी सभ्यताओं के प्रभाव अभी तक नहीं पहुँचे हैं। ऐसा मैंने इसलिए किया है, ताकि वहाँ एक ऐसी नस्ल पैदा हो, जिसकी अनेकेश्वरवाद की निरंतरता से अलग होकर परवरिश हो और वास्तविक अर्थों में एक ही ईश्वर की इबादत करनेवाली बन सके।

किसी सभ्यता का निरंतरता से अलग हटकर परवरिश पाना क्या अर्थ रखता है, इसकी स्पष्टता एक आंशिक उदाहरण से होती है। लेखक एक ऐसे

इलाक़े का रहने वाला है, जिसकी भाषा उर्दू है। मेरे पिता उर्दू बोलते थे। मैं भी उर्दू बोलता हूँ और मेरे बच्चों की भाषा भी उर्दू है। अब यह हुआ कि मेरा एक लड़का लंदन में एक ऐसे इलाक़े में रहने लगा, जहाँ केवल अंग्रेज़ी बोलने वाले लोग रहते हैं और हर तरफ़ अंग्रेज़ी भाषा का माहौल है। इसका नतीजा यह हुआ कि मेरे उस लड़के के बच्चे अब केवल अंग्रेज़ी भाषा जानते हैं। वे उर्दू में अपने विचारों को प्रकट करने की योग्यता नहीं रखते। जब मैं लंदन गया तो मुझे अपने उन पोतों से अंग्रेज़ी भाषा में बात करनी पड़ी।

मेरे उन पोतों का यह हाल इसलिए हुआ, क्योंकि उनकी परवरिश उर्दू की निरंतरता से अलग हटकर हुई। अगर वे मेरे साथ दिल्ली में होते तो उन बच्चों का यह मामला कभी न होता।

इस्माईल की क़ुर्बानी की घटना की हक़ीक़त भी यही है। इब्राहीम को जो सपना (क़ुरआन, 37:102) दिखाया गया, वह उदाहरणात्मक सपना था, लेकिन इब्राहीम अपनी बहुत ही ज़्यादा निष्ठा के कारण उसके पालन के लिए तैयार हो गए। प्राचीन मक्का में न पानी था, न हरियाली और न ही ज़िंदगी का कोई सामान। ऐसी स्थिति में अपनी संतान को वहाँ बसाना निश्चित ही उन्हें क़ुर्बान करने के समान था। इसका मतलब यह था कि उन्हें जीते-जी मौत के हवाले कर दिया जाए। अनेकेश्वरवाद की निरंतरता से अलग करके नई नस्ल पैदा करने की योजना किसी ऐसी जगह पर ही व्यवहार में लाई जा सकती थी, जहाँ ज़िंदगी के साधन न हों और इस आधार पर वहाँ कोई इंसानी आबादी न हो। इब्राहीम के सपने का मतलब यह था कि वे अपनी संतान को आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से क़ुर्बान करके ऊपर वर्णित नस्ल तैयार करने में ईश्वरीय योजना का साथ दें।

यह योजना हालाँकि संसाधनों के दायरे में व्यवहार में लानी थी, इसलिए उसकी नियमानुसार निगरानी भी होती रही। इब्राहीम ख़ुद फ़िलिस्तीन में रहा करते थे, लेकिन वे कभी-कभी इसकी जाँच के लिए मक्का जाते रहते थे।

शुरुआत में उस जगह पर केवल हाजरा और इस्माईल थे। बाद में जब वहाँ ज़मज़म का पानी निकला आया तो क़बीला जुरहुम के कुछ ख़ानाबदोश लोग यहाँ आकर बस गए। इस्माईल बड़े हुए तो उन्होंने क़बीला जुरहुम की एक लड़की से विवाह कर लिया। रिवायात में आता है कि इब्राहीम एक बार फ़िलिस्तीन से चलकर मक्का पहुँचे तो उस समय इस्माईल घर पर नहीं थे। इब्राहीम ने उनकी पत्नी से हाल-चाल मालूम किया। पत्नी ने बताया कि हम बहुत बुरे हाल में हैं

और बड़ी कठिनाई से गुज़र-बसर हो रहा है। इब्राहीम यह कहकर वापस आ गए कि जब इस्माईल आएँ तो उन्हें मेरा सलाम कहना और यह कहना कि अपने दरवाज़े की चौखट बदल दो। इस्माईल जब लौटे और पत्नी से यह बात सुनी तो वे समझ गए कि यह मेरे पिता थे और उनका संदेश उदाहरण की भाषा में यह है कि मैं मौजूदा औरत को छोड़कर दूसरी औरत से विवाह कर लूँ। इसलिए उन्होंने उसे तलाक़ दे दी और क़बीले की दूसरी औरत से विवाह कर लिया। इब्राहीम की नज़र में वह औरत इस योग्य न थी कि तैयार की जाने वाली नस्ल की माँ बन सके।

कुछ समय बाद इब्राहीम दोबारा मक्का आए। अब भी इस्माईल घर पर न थे, लेकिन उनकी दूसरी पत्नी वहाँ मौजूद थी। इब्राहीम ने उससे हाल-चाल पूछा तो उसने सब्र और शुक्र की बातें की और कहा कि हम बहुत अच्छे हाल में हैं। इब्राहीम यह कहकर लौट गए कि जब इस्माईल आएँ तो उनसे मेरा सलाम कहना और यह संदेश देना कि अपने घर की चौखट को बनाए रखो। जब इस्माईल वापस आए और अपनी पत्नी से वह सब बातें सुनीं तो वे समझ गए कि यह मेरे पिता थे और उनके संदेश का मतलब यह है कि इस औरत के अंदर यह योग्यता है कि योजनानुसार अनुकूलता करके रह सके और फिर इससे वह नस्ल तैयार हो, जिसका तैयार करना ईश्वर को वांछित है। (तफ़्सीर इब्ने-कसीर)

इस तरह अरब के मरुस्थल के अलग-थलग माहौल में एक नस्ल बनना शुरू हुई। इस नस्ल की ख़ासियतें क्या थीं, इसके बारे में हम यह कह सकते हैं कि यह नस्ल एक ही समय में दो ख़ासियतें रखती थी— एक प्राकृतिक और दूसरी मर्दानगी।

अरब के मरुस्थलीय (desert) माहौल में प्रकृति के सिवा और कोई चीज़ न थी, जो इंसान को प्रभावित करे। खुले जंगल, ऊँचे पहाड़, रात के समय दूर तक फैले आसमान में जगमगाते हुए तारे आदि। इस तरह के प्राकृतिक दृश्य चारों ओर से इंसान को एकेश्वरवाद की सीख दे रहे थे। वे हर समय उसे ईश्वर की महानता और कारीगरी की याद दिलाते थे। इस ख़ालिस ईश्वरीय माहौल में परवरिश पाकर वह नस्ल तैयार हुई, जो इब्राहीम के शब्दों में इस बात की योग्यता रखती थी कि वह सही मायनों में उम्मत-ए-मुस्लिमा (सूरह बक़रह, 2:128) बन सके यानी अपने आपको पूरी तरह से ईश्वर को सौंप देने वाली क़ौम। यह एक

ऐसी क़ौम थी, जिसकी प्रकृति अपनी शुरुआती हालत में सुरक्षित थी। इसीलिए वह प्राकृतिक धर्म को स्वीकार करने में पूरी क्षमता रखती थी।

इसी के साथ दूसरी चीज़, जिसे पैदा करने के लिए यह माहौल विशेष रूप से उपयुक्त था; वह वही है, जिसे अरबी भाषा में 'अल-मुरूआ' (मर्दानगी) कहते हैं। प्राचीन हिजाज़ (सऊदी अरब का उत्तर पश्चिमी तटवर्तीय इलाक़ा) के पथरीले माहौल में ज़िंदगी गुज़ारना बहुत मुश्किल था। वहाँ बाहरी साधनों से ज़्यादा इंसान के गुण उपयोगी होते थे। वहाँ बाहरी माहौल में वह चीज़ें मौजूद न थीं, जिन पर इंसान भरोसा करता है। वहाँ इंसान के पास एक ही चीज़ थी और वह उसका अपना वजूद था। ऐसे माहौल में प्राकृतिक रूप से ऐसा होना था कि इंसान के आंतरिक गुण ज़्यादा-से-ज़्यादा उजागर हों। इस तरह दो हज़ार साल के अमल के परिणामस्वरूप वह क़ौम बनकर तैयार हुई, जिसके अंदर आश्चर्यजनक रूप से उच्च पौरुष गुण थे। प्रोफ़ेसर फ़िलिप हिट्टी के शब्दों में, पूरा अरब बहादुरों की एक ऐसी नर्सरी (nursery of heroes) में बदल गया, जिसका उदाहरण न इससे पहले के इतिहास में पाया गया और न इसके बाद।

छठी शताब्दी ईस्वी में वह समय आ गया था कि इतिहास में अनेकेश्वरवाद की निरंतरता को तोड़ने की योजना को पूरा किया जाए। इसलिए इस्माईल की नस्ल में आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद पैदा हुए, जिनके बारे में क़ुरआन में इन शब्दों का वर्णन है—

> "वही है, जिसने भेजा अपने पैग़ंबर को मार्गदर्शन और सच्चे धर्म के साथ, ताकि उसे सब धर्मों पर प्रभावशाली कर दे, चाहे अनेकेश्वरवादियों को यह कितना ही नापसंद हो।" (61:9)

इस आयत से पता चलता है कि आख़िरी पैग़ंबर का ख़ास मिशन यह था कि अनेकेश्वरवादी धर्म को प्रभुत्व (dominance) के स्थान से हटा दें और एकेश्वरवादी धर्म को प्रभावशाली धर्म की हैसियत से दुनिया में स्थापित कर दें। इस प्रभुत्व का मतलब दरअसल वैचारिक और सैद्धांतिक प्रभुत्व है यानी लगभग उसी तरह का प्रभुत्व, जैसा कि मौजूदा ज़माने में वैज्ञानिक विद्याओं को पारंपरिक विद्याओं के ऊपर हासिल हुआ है।

यह प्रभुत्व इतिहास की सबसे ज़्यादा मुश्किल योजना थी। इसका कुछ अंदाज़ा इस उदाहरण से हो सकता है कि प्राचीन पारंपरिक विद्याओं को अगर आधुनिक वैज्ञानिक विद्याओं पर प्रभावशाली करने की मुहिम चलाई जाए तो

वह कितनी मुश्किल होगी। इसी तरह सातवीं शताब्दी में यह बड़ा मुश्किल काम था कि अनेकेश्वरवादी सभ्यता को पराजित किया जाए और उसकी जगह एकेश्वरवादी धर्म को प्रभावशाली विचार का दर्जा दिया जाए। किसी व्यवस्था के वैचारिक प्रभुत्व को समाप्त करना ऐसा ही है, जैसे किसी पेड़ को जड़ सहित उखाड़ फेंकना। इस तरह का काम बहुत ही मुश्किल काम होता है, जो बड़ी गहरी योजनाबंदी और कड़े संघर्ष के बाद ही अंजाम दिया जा सकता है।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद को दो विशेष सहायक चीज़ें प्रदान की गईं। एक वह, जिसका वर्णन सूरह आले-इमरान की आयत नं० 110 में इस तरह है— "तुम सर्वश्रेष्ठ समूह हो, जिसे लोगों के लिए निकाला गया है।" दो हज़ार साल के अमल के नतीजे में एक ऐसा समूह तैयार किया गया, जो समय का बेहतरीन सर्वश्रेष्ठ समूह था। जैसा कि बताया गया, एक ओर वह अपनी रचनात्मक प्रकृति पर क़ायम था और दूसरी ओर वह चीज़ें उसके अंदर पूरी तरह मौजूद थीं, जिसे सदाचारी चरित्र या पौरुष गुण कहा जाता है। इसी समूह के चुने हुए बेहतरीन लोग इस्लाम स्वीकार करने के बाद वह लोग बने, जिन्हें असहाब-ए-रसूल यानी पैग़ंबर के साथी कहा जाता है।

दूसरी ख़ास मदद वह थी, जिसकी ओर सूरह अर-रूम की शुरुआती आयतों में संकेत मिलता है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के भेजे जाने के समय दुनिया में दो बड़े अनेकेश्वरवादी साम्राज्य थे। एक रूमी,बाइजेंटाइन साम्राज्य और दूसरा ईरानी, सासानी साम्राज्य। उस समय की आबाद दुनिया का ज़्यादातर हिस्सा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं दोनों साम्राज्यों के क़ब्ज़े में था। एकेश्वरवाद को बड़े पैमाने पर दुनिया में प्रभावशाली करने के लिए इन दोनों अनेकेश्वरवादी साम्राज्यों से टकराव अनिवार्य था। ईश्वर ने यह किया कि ठीक उसी ज़माने में दोनों साम्राज्यों को एक-दूसरे से टकरा दिया। उनकी यह लड़ाई पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रही। एक बार ईरानी उठे और रूमियों की ताक़त को तहस-नहस करके उनके साम्राज्य के एक बहुत बड़े हिस्से पर क़ब्ज़ा कर लिया। दूसरी बार रूमी उठे और उन्होंने ईरानियों की ताक़त को बिल्कुल तोड़ डाला। यही कारण है कि असहाब-ए-रसूल जब पैग़ंबर-ए-इस्लाम के नेतृत्व में संगठित होकर उठे तो उन्होंने बहुत कम समय में एशिया और अफ़्रीक़ा के बड़े हिस्से को जीत लिया और हर तरफ़ अनेकेश्वरवाद को हरा दिया और एकेश्वरवाद का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इस सिलसिले में प्रोफ़ेसर हिट्टी के एक बयान का यहाँ वर्णन किया जाता है—

‘The enfeebled condition of the rival Byzantines and Sasanids who had conducted internecine against each other for many generation, the heavy taxes, consequent upon these wars, imposed on the citizens of both empires and undermining their sense of loyalty… all these paved the way for the surprisingly rapid progress of Arabian arms’.

Philip K. Hitti, *History of the Arabs*, London, p. 142-43

रूमी और ईरानी साम्राज्यों की आपसी दुश्मनी ने दोनों को बहुत ज़्यादा कमज़ोर कर दिया था। दोनों ने एक-दूसरे के ख़िलाफ़ विनाशकारी युद्ध छेड़ रखा था। यह सिलसिला कई पीढ़ियों तक जारी रहा। इसका ख़र्च पूरा करने के लिए प्रजा पर भारी कर लगाए गए, जिसके परिणामस्वरूप प्रजा अपने शासकों के प्रति वफ़ादार न रही। इस तरह यही वह चीज़ें थीं, जिन्होंने अरब के हथियारों को मौक़ा दिया कि वे रूमी और ईरानी इलाक़ों में आश्चर्यजनक सीमा तक कामयाबी हासिल कर सकें।

इतिहासकारों ने सामान्य रूप से इस घटना का वर्णन किया है, लेकिन वे इसे एक साधारण स्वाभाविक घटना समझते हैं। हालाँकि यह असाधारण घटना एक ईश्वरीय योजना थी, जो आख़िरी पैग़ंबर के समर्थन के लिए विशेष रूप से प्रकट की गई।

एक अमेरिकी एनसाइक्लोपीडिया में ‘इस्लाम’ के शीर्षक से जो लेख है, उसमें एक ईसाई लेखक ने यह शब्द लिखे हैं कि इस्लाम के आने से मानव इतिहास की दिशा बदल गई—

‘Its advent changed the course of human history.’

यह एक हक़ीक़त है कि पहले दौर की इस्लामी क्रांति के बाद मानव इतिहास में ऐसे परिवर्तन हुए, जो इससे पहले इतिहास में कभी नहीं हुए थे और उन सारे परिवर्तनों की जड़ यह थी कि दुनिया में अनेकेश्वरवाद की निरंतरता समाप्त होकर एकेश्वरवाद की निरंतरता जारी हुई। अनेकेश्वरवाद सारी बुराइयों की जड़ है और एकेश्वरवाद सारी ख़ूबियों का स्रोत है। इसलिए जब यह बुनियादी घटना घटी तो इसी के साथ इंसान के लिए सारी ख़ूबियों का दरवाज़ा खुल गया, जो अनेकेश्वरवाद के प्रभाव के कारण अब तक उसके लिए बंद पड़ा था।

अब अंधविश्वासी दौर के समाप्त होने के बाद ज्ञानात्मक दौर शुरू हुआ। मानवीय विभेद की बुनियाद ढह गई और इसके बजाय मानवीय समानता का दौर शुरू हुआ। जातीय शासन की जगह लोकतांत्रिक शासन की बुनियाद पड़ी। प्राकृतिक प्रदर्शन, जो सारी दुनिया में पूजा का विषय बने हुए थे, पहली बार अनुसंधान और वशीभूत का विषय बने और इस तरह प्रकृति की हक़ीक़तों के खुलने की शुरुआत हुई। यह दरअसल एकेश्वरवाद की ही क्रांति थी, जिससे उन सारी क्रांतियों की बुनियाद पड़ी, जो अंततः प्रसिद्ध घटना को पैदा करने का कारण बनीं, जिसे आधुनिक विकसित दौर कहा जाता है।

इब्राहीम ने दुआ की थी—

"हे ईश्वर ! मुझे और मेरी संतान को इससे बचा कि हम मूर्तियों की पूजा करें। हे ईश्वर ! इन मूर्तियों ने बहुत से लोगों को गुमराह कर दिया।" (क़ुरआन, 14:36)

सवाल यह है कि मूर्तियों ने किस तरह लोगों को गुमराह किया? मूर्तियों में वह कौन-सी ख़ासियत थी, जिसके आधार पर वे लोगों को गुमराह करने में सफल हुईं? इसका राज़ उस समय समझ में आता है, जब यह देखा जाए कि इब्राहीम के ज़माने में वह कौन-सी मूर्तियाँ थीं, जिनके बारे में आपने यह शब्द कहे।यह मूर्तियाँ सूरज, चाँद और सितारे थे। ऐतिहासिक रूप से साबित है कि इब्राहीम के ज़माने में जो सभ्य दुनिया थी, उसमें हर जगह आसमान में चमकते पिंडों की पूजा होती थी जिन्हें सूरज, चाँद और सितारे कहा जाता है। इसी से यह बात मालूम हो जाती है कि यह मूर्तियाँ क्योंकर लोगों को गुमराह कर पाती थीं।

हालाँकि ईश्वर सबसे बड़ी हक़ीक़त है, लेकिन वह आँखों से दिखाई नहीं देता। इसके विपरीत सूरज, चाँद और सितारे हर आँख को जगमगाते हुए नज़र आते हैं। इसी जगमगाहट के कारण लोग उनके धोखे में आ गए और उनसे प्रभावित होकर उन्हें पूजना शुरू कर दिया। उन रोशन पिंडों का प्रभाव इंसान के ज़हन पर इतना ज़्यादा हुआ कि वह पूरी इंसानी सोच पर छा गया, यहाँ तक कि शासन की स्थापना भी उन्हीं की बुनियाद पर होने लगी। उस समय के राजा अपने आपको सूरज की संतान और चाँद की संतान बताकर लोगों पर शासन करने लगे।

आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद के द्वारा एकेश्वरवाद को प्रभावशाली करके इस दौर को ख़त्म किया गया। उस समय एकेश्वरवाद के प्रभुत्व की जो योजना बनाई गई, उसके दो ख़ास पड़ाव थे। पहला पड़ाव वह था, जिसे

क़ुरआन में— "और उनसे लड़ो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन सारा-का-सारा ईश्वर के लिए हो जाए" (8:39) कहा गया है। इस आयत में 'फ़ितना' का मतलब आक्रामक अनेकेश्वरवाद है। प्राचीनकाल में अनेकेश्वरवाद को आक्रामकता का अवसर इसलिए प्राप्त था, क्योंकि उस ज़माने में शासन की बुनियाद अनेकेश्वरवाद पर स्थापित हो गई थी। अनेकेश्वरवाद को पूरी तरह से शासन का संरक्षण प्राप्त था। ऐसी स्थिति में जब एकेश्वरवाद का निमंत्रण दिया जाता था तो उस समय के शासकों को यह महसूस होने लगता कि यह निमंत्रण उनके शासन के अधिकार को संदिग्ध कर रहा है, इसलिए वे एकेश्वरवाद के निमंत्रणकर्ताओं को कुचलने के लिए खड़े हो जाते। प्राचीनकाल में आक्रामक आस्था का मूल कारण यही था।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम और आपके साथियों को यह हुक्म हुआ कि अनेकेश्वरवाद की पताका उठाने वालों से लड़ो और अनेकेश्वरवाद की इस हैसियत को समाप्त कर दो कि वे एकेश्वरवाद के निमंत्रणकर्ताओं को अपने अत्याचार का निशाना न बना सकें। दूसरे शब्दों में, इसका मतलब यह था कि अनेकेश्वरवाद का संबंध राजनीति से समाप्त कर दिया जाए। अनेकेश्वरवाद और राजनीति, दोनों एक-दूसरे से अलग हो जाएँ। पैग़ंबर और आपके साथियों ने यह मुहिम पूरी ताक़त से शुरू की। उनकी कोशिशों से पहले अरब में अनेकेश्वरवाद का दबदबा समाप्त हुआ। उसके बाद प्राचीन आबाद दुनिया के ज़्यादातर इलाक़ों में अनेकेश्वरवादी व्यवस्था को हराकर हमेशा के लिए अनेकेश्वरवाद की आक्रामक हैसियत को समाप्त कर दिया गया। अब हमेशा के लिए अनेकेश्वरवाद अलग हो गया और राजनीतिक सत्ता अलग।

अनेकेश्वरवाद पर एकेश्वरवाद के प्रभुत्व का दूसरा पड़ाव वह था, जिसका वर्णन क़ुरआन की इस आयत में है—

"हम उन्हें अपनी निशानियाँ दिखाएँगे, क्षितिज में भी और ख़ुद उनके अंदर भी। यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यह क़ुरआन हक़ है।" (41:53) पहले पड़ाव का मतलब प्रकृति के प्रदर्शनों से राजनीतिक दृष्टिकोण ग्रहण करने को समाप्त करना था। वह सातवीं शताब्दी ईस्वी में पूरी तरह पूरा हो गया। दूसरे पड़ाव का मतलब यह था कि प्राकृतिक प्रदर्शनों से अंधविश्वासों के पर्दे को हटा दिया जाए और उसे ज्ञान के प्रकाश में लाया जाए। इस दूसरे पड़ाव की शुरुआत

पैग़ंबर के ज़माने से हुई और उसके बाद वह मौजूदा वैज्ञानिक क्रांति के रूप में पूरा हुआ।

मौजूदा दुनिया ईश्वर के गुणों का प्रकट होना है। यहाँ रचनाओं के आईने में आदमी उसके रचयिता को पाता है। वह उस पर सोच-विचार करके ईश्वर की ताक़त और महानता का अवलोकन करता है, लेकिन प्राचीन अंधविश्वासी विचारों ने दुनिया की चीज़ों को रहस्यमय रूप से पवित्र बना रखा था। हर चीज़ के बारे में कुछ अंधविश्वासी आस्थाएँ बन गई थीं और ये आस्थाएँ उन चीज़ों की खोज में रुकावट थीं। एकेश्वरवाद की क्रांति के बाद जब सारी दुनिया ईश्वर की रचना स्वीकार की गई तो इसके बारे में पवित्रता का विचार समाप्त हो गया। अब दुनिया की हर चीज़ का निष्पक्ष अध्ययन किया जाने लगा और उसकी खोजबीन शुरू हो गई।

इस खोजबीन और अध्ययन के परिणामस्वरूप चीज़ों की हक़ीक़तें सामने आने लगीं। दुनिया के अंदर प्रकृति की जो गुप्त व्यवस्था जारी है, वह इंसान के सामने आने लगी, यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञान की क्रांति के रूप में वह भविष्यवाणी पूरी हो गई, जिसका वर्णन उपरोक्त आयत में है।

आधुनिक विज्ञान के अध्ययन ने कायनात की जो हक़ीक़तें इंसान के सामने खोली हैं, उन्होंने हमेशा के लिए अंधविश्वासी दौर को ख़त्म कर दिया है। इन खोजी गई हक़ीक़तों से एक ही समय में दो फ़ायदे हासिल हुए हैं। एक यह कि धार्मिक आस्थाएँ अब केवल दावों की आस्थाएँ नहीं रहीं, बल्कि ख़ुद इंसान के ज्ञान के द्वारा उनका सत्य होना एक प्रमाणित चीज़ बन गया है।

दूसरा यह कि यह जानकारियाँ एक ईश्वरभक्त के लिए उसके विश्वास में वृद्धि का अथाह भंडार हैं। इनके द्वारा कायनात के बारे में जो कुछ पता चला है, वह हालाँकि बहुत कम है, फिर भी वह इतना ज़्यादा हैरान करने वाला है कि उसे पढ़कर और जानकर आदमी के शरीर के रोंगटे खड़े हो जाएँ। उसका ज़हन ईश्वर की पहचान की रोशनी हासिल करे। उसकी आँखें ईश्वर की महानता और डर से आँसू बहाने लगे। वह आदमी को उस ऊँचे दर्जे तक पहुँचा दे, जिसे हदीस में 'ईश्वर की इबादत इस तरह करो, जैसे तुम उसे देख रहे हो' कहा गया है।

आधुनिक काल में इस्लाम का पुनर्जागरण

मौजूदा ज़माने में इतिहास दोबारा वहीं पहुँच गया है, जहाँ वह डेढ़ हज़ार वर्ष पहले के दौर में पहुँचा था। प्राचीनकाल में इंसान पर अनेकेश्वरवाद का प्रभाव इस

तरह पड़ा कि इतिहास में उसकी निरंतरता स्थापित हो गई और हालत यहाँ तक पहुँची कि हर आदमी जो इंसानी नस्ल में पैदा होता, वह अनेकेश्वरवादी होता। अब पिछले कुछ सौ वर्षों के अमल के परिणामस्वरूप नास्तिकतावादी विचार (atheistic views) इंसान पर प्रभावशाली हो गए हैं। ज्ञान एवं व्यवहार के हर विभाग में नास्तिकतावादी विचार-शैली इस तरह छा गई है कि दोबारा मानव इतिहास में नास्तिकता की निरंतरता स्थापित हो गई है। अब हर आदमी, जो पैदा होता है, चाहे वह दुनिया के किसी भी हिस्से में पैदा हो, वह नास्तिकतावादी विचारों के प्रभाव में पैदा होता है। नास्तिकता आज का प्रभावशाली धर्म है और इस्लाम का पुनर्जागरण (renaissance) मौजूदा दौर में उस समय तक संभव नहीं, जब तक नास्तिकता को वैचारिक प्रभुत्व (conceptual dominance) के स्थान से हटाया न जाए।

मौजूदा ज़माने में इस्लाम के पुनर्जागरण को संभव बनाने के लिए दोबारा वही दोनों तरीक़े अपनाने हैं, जो पहले प्रभुत्व के समय अपनाए गए थे यानी लोगों की तैयारी और सत्य के विरोधियों की हार।

पहला काम हमें ख़ुद अपने संसाधनों के तहत अंजाम देना है। जहाँ तक दूसरे काम का मामला है, उसे मौजूदा ज़माने में दोबारा ईश्वर ने उसी तरह बहुत बड़े पैमाने पर अंजाम दे दिया है, जिस तरह उसने पहले दौर में अंजाम दिया था। ज़रूरत सिर्फ़ यह है कि इन पैदा हो चुके अवसरों को इस्तेमाल किया जाए।

(1) मौजूदा ज़माने में इस्लाम के पुनर्जागरण की मुहिम को कामयाब बनाने के लिए सबसे पहले काम करने वाले लोगों की ज़रूरत है मानो अब दोबारा एक नए अंदाज़ में उसी चीज़ की ज़रूरत है, जिसकी हज़रत इब्राहीम की योजना में ज़रूरत थी यानी सही मायनों में एक मुस्लिम गिरोह की तैयारी।

मौजूदा ज़माने में इस्लामी पुनर्जागरण की मुहिम चलाने के लिए जिन लोगों की ज़रूरत है, वे साधारण मुसलमान नहीं हैं; बल्कि ऐसे लोग हैं, जिनके लिए इस्लाम एक खोज (discovery) बन गया हो। वह घटना, जो किसी इंसान को सबसे ज़्यादा एक्टिव करती है, वह इसी खोज की घटना है। जब आदमी किसी चीज़ को खोज के दर्जे में पाए तो अचानक उसके अंदर एक नई शख़्सियत उभर आती है। विश्वास, साहस, संकल्प, मर्दानगी, उदारता, क़ुर्बानी, एकता— मतलब यह कि वह सभी गुण, जो कोई बड़ा काम करने के लिए ज़रूरी हैं, वह सब, खोज की बुनियाद पर पैदा होते हैं।

मौजूदा ज़माने में पश्चिमी क़ौमों में जो उच्च गुण पाए जाते हैं, वह सब, इसी खोज का नतीजा हैं। पश्चिमी क़ौमों ने पारंपरिक संसार की तुलना में वैज्ञानिक दुनिया की खोज की है। यही वह खोज का अहसास है, जिसने पश्चिमी क़ौमों में वह उच्च गुण पैदा कर दिए हैं, जो आज उनके अंदर पाए जाते हैं।

शुरुआती दौर में हज़रत मुहम्मद के साथियों का मामला भी यही था। उन्हें ईश्वरीय धर्म खोज के रूप में मिला था। उन्होंने अज्ञानता की तुलना में इस्लाम धर्म को पाया था। उन्होंने अनेकेश्वरवाद की तुलना में एकेश्वरवाद को खोज के रूप में पाया था। उन पर संसार की तुलना में परलोक का प्रकटन हुआ था। यही चीज़ थी, जिसने उनके अंदर वह असाधारण गुण पैदा कर दिए, जिन्हें आज हम किताबों में पढ़ते हैं। आज अगर इस्लामी पुनर्जागरण की मुहिम को प्रभावी रूप से चलाना है तो दोबारा ऐसे इंसान पैदा करने होंगे, जिन्हें इस्लाम खोज के रूप में मिला हो, न कि केवल नस्ली विरासत के रूप में।

(2) इस्लाम चौदह सौ वर्ष पहले शुरू हुआ। उसके बाद इसका एक इतिहास बना— सांस्कृतिक महानता और राजनीतिक विजय-प्राप्ति का इतिहास। आज जो लोग अपने आपको मुसलमान कहते हैं, वे इसी इतिहास के किनारे खड़े हुए हैं। जिस क़ौम की भी यह हालत हो, वह हमेशा नज़दीकी इतिहास में अटककर रह जाती है। वह इतिहास से गुज़रकर शुरुआती असलियत तक नहीं पहुँचती। यही मामला आज मुसलमानों का है। मौजूदा ज़माने के मुसलमान विवेकी या अविवेकी रूप से अपना धर्म इतिहास से ले रहे हैं, न कि वास्तविकता में क़ुरआन और सुन्नते-रसूल से।

यही कारण है कि इस्लाम आज के मुसलमानों के लिए गर्व की चीज़ बना हुआ है, न कि ज़िम्मेदारी की चीज़। उनके विचारों और व्यवहारों में यह मानसिकता इस तरह बस गई है कि हर जगह इसका अवलोकन किया जा सकता है। इस्लाम को क़ुरआन और सुन्नत में देखिए तो वह सरासर ज़िम्मेदारी की चीज़ नज़र आएगा। इसके विपरीत इस्लाम को जब उसके सांस्कृतिक इतिहास और राजनीतिक घटनाओं के आईने में देखा जाएगा तो वह गर्व और महानता की चीज़ मालूम होने लगता है। वर्तमान दौर में मुसलमानों के सारे क्रांतिकारी आंदोलन इसी गर्व की भावना के अधीन उठे। यही कारण है कि वे वक़्ती हंगामे पैदा करके ख़त्म हो गए, क्योंकि, गर्व की भावना पाखंड और हंगामे की ओर ले जाती है और ज़िम्मेदारी की भावना हक़ीक़त और गंभीर व्यवहार की ओर।

इस्लामी पुनर्जागरण की मुहिम को प्रभावी रूप से चलाने के लिए वह लोग चाहिए, जिन्होंने इस्लाम को क़ुरआन और हदीस की शुरुआती शिक्षाओं से हासिल किया हो, न कि बाद में बनने वाले सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास से। क़ुरआन और हदीस से धर्म को हासिल करने वाले लोग ही गंभीरता और ज़िम्मेदारी की भावना के तहत कोई सच्ची मुहिम चला सकते हैं। इसके विपरीत जो लोग इतिहास से अपना धर्म हासिल करें, वे केवल अपने गर्व का झंडा बुलंद करेंगे, वे किसी परिणामजनक कार्यविधि (result oriented action) का सबूत नहीं दे सकते।

मौजूदा ज़माने में मुसलमान एक हारी हुई क़ौम बने हुए हैं। पूरी मुस्लिम दुनिया इस अहसास में जी रही है कि उस पर ज़ुल्म हो रहा है (persecution complex)। इसका कारण इतिहास से धर्म को लेना है। हमने ऐतिहासिक महानता को धर्म समझा। हमने 'लालक़िला' और 'ग्रेनाडा' में अपनी इस्लामियत की पहचान की खोज की। चूँकि मौजूदा ज़माने में दूसरी क़ौमों ने हमसे यह चीज़ें छीन लीं, इसलिए हम फ़रियाद और ग़म में लीन हो गए। अगर हम ईश्वर के मार्गदर्शन को धर्म समझते तो हम कभी निराशा की अनुभूति का शिकार न होते, क्योंकि वह ऐसी चीज़ है, जिसे कोई ताक़त हमसे कभी छीन नहीं सकती। हमने छिन जाने वाली चीज़ों को इस्लाम समझा, इसलिए जब वह छिन गईं तो हम शिकायत और निराशा की आकृति बनकर रह गए। अगर हम न छिनने वाली चीज़ों को इस्लाम समझते तो हमारा कभी वह हाल न होता, जो आज हर ओर नज़र आ रहा है। कैसी अजीब बात है कि जो ज़्यादा बड़ी चीज़ हमारे पास अभी तक बिना छिनी हुई सुरक्षित है, उसकी हमें समझ नहीं और जो छोटी चीज़ हमसे छिन गई है, उसके लिए हम शिकायत और विरोध में व्यस्त हैं।

इसी का यह नतीजा है कि पूरी दुनिया में मुसलमान दूसरी क़ौमों से लड़ाई-झगड़े में व्यस्त हैं। वे इस्लाम को अपनी क़ौमी महानता का निशान समझते हैं, इसलिए जो लोग उन्हें इस महानता को छीनते हुए नज़र आते हैं, उनके ख़िलाफ़ वे लड़ने के लिए खड़े हो गए हैं। कहीं यह लड़ाई शब्दों के द्वारा हो रही है और कहीं हथियारों के द्वारा। इस परिस्थिति ने मुसलमानों के पूरे रवैय्ये को नकारात्मक बना दिया है। इस्लाम अगर उन्हें ईश्वरीय मार्गदर्शन के रूप में मिलता तो वे महसूस करते कि उनके पास दूसरी क़ौमों को देने के लिए कोई चीज़ है। वे अपने को देने वाला समझते और दूसरे को लेने वाला। जबकि मौजूदा हालात में वे समझते हैं कि वे

छिने हुए लोग हैं और दूसरे छीनने वाले लोग। हमारे और दूसरी क़ौमों के बीच सच्चा संबंध निमंत्रणकर्ता और निमंत्रित का है, लेकिन ऐतिहासिक इस्लाम को इस्लाम समझने का यह नतीजा हुआ है कि दूसरी क़ौमें हमारे लिए केवल प्रतिद्वंद्वी और दुश्मन बनकर रह गई हैं। हमारे और दूसरी क़ौमों के बीच जब तक यह प्रतिद्वंद्विता का माहौल बाक़ी है, इस्लामी पुनर्जागरण का कोई सच्चा काम शुरू नहीं किया जा सकता।

पहले ही पड़ाव में ऐसा नहीं हो सकता कि सभी मुसलमानों को प्रतिद्वंद्वितावादी मानसिकता से मुक्त कर दिया जाए, लेकिन कम-से-कम एक ऐसी टीम का होना ज़रूरी है, जिसके लोग अपनी सीमा तक इस ज़हनी माहौल से निकल चुके हों। जिनके अंदर ऐसा वैचारिक परिवर्तन (ideological change) आ चुका हो कि वे दूसरी क़ौमों को अपना निमंत्रित समझें, न कि भौतिक प्रतिद्वंद्वी और क़ौमी दुश्मन। यह देखने में साधारण-सी बात बड़ी मुश्किल बात है। इसके लिए अपने आपको क़ुर्बान करना पड़ता है। अपने और दूसरी क़ौमों के बीच निमंत्रणकर्ता और निमंत्रित का संबंध स्थापित करने की अनिवार्य शर्त यह है कि हम एकतरफ़ा तौर पर सारी शिकायतों को भुला दें। हर तरह की भौतिक हानियों को सहन करने के लिए तैयार हो जाएँ। निमंत्रणकर्ता और निमंत्रित का संबंध निमंत्रणकर्ता की ओर से एकतरफ़ा क़ुर्बानी पर स्थापित होता है और मौजूदा दुनिया में नि:संदेह यह सबसे ज़्यादा मुश्किल काम है।

पहले दौर में इस्लामी क्रांति को संभव बनाने के लिए ईश्वर ने एक ख़ास इंतज़ाम यह किया कि ईरान और रोम के साम्राज्य, जो उस ज़माने में एकेश्वरवादी धर्म के सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी थे, उन्हें आपस में टकराकर इतना कमज़ोर कर दिया कि मुसलमानों के लिए उन्हें हराना बड़ा आसान हो गया।

ईश्वर की यही मदद मौजूदा ज़माने के मुसलमानों के लिए एक और रूप में सामने आई है और वह है कायनात के बारे में ऐसी जानकारियों का सामने आना, जो धार्मिक सच्चाइयों को चमत्कारिक स्तर पर साबित कर रही हैं। प्राचीनकाल में अंधविश्वासी विचार-शैली का वर्चस्व था, इस आधार पर कायनाती दुनिया के बारे में इंसान ने अजीब-अजीब आधारहीन मत स्थापित कर रखे थे। ब्रह्मांड को क़ुरआन में 'आला-ए-रब' यानी 'ईश्वर का चमत्कार' कहा गया है, लेकिन यह ईश्वरीय चमत्कार अंधविश्वासी पर्दे में छुपा हुआ था।

पहले दौर की इस्लामी क्रांति के नतीजों में से एक नतीजा यह है कि प्रकृति

के प्रदर्शन, जो इससे पहले इबादत का विषय बने हुए थे, वह इंसान के लिए खोज और विजय का विषय बन गए। इस तरह मानव इतिहास में पहली बार प्रकृति की घटनाओं को शुद्ध ज्ञानात्मक (वैज्ञानिक) शैली में जानने का विचार पैदा हुआ। यह विचार लगातार बढ़ता रहा, यहाँ तक कि वह यूरोप पहुँचा। यहाँ तरक़्क़ी पाकर वह उस क्रांति का कारण बना, जिसे वर्तमान युग में 'वैज्ञानिक क्रांति' कहा जाता है।

विज्ञान ने जैसे अंधविश्वासी पर्दे को हटाकर ईश्वर के चमत्कार का ईश्वरीय चमत्कार होना साबित कर दिया। उसने प्रकृति के प्रदर्शन को 'पूज्य' के स्थान से हटाकर 'रचना' के स्थान पर रख दिया, यहाँ तक कि स्थिति ऐसी हो गई कि चाँद, जिसकी प्राचीनकाल में इंसान ईश्वर समझकर पूजा करता था, उस पर उसने अपने पाँव रख दिए और वहाँ अपनी मशीनें उतार दीं। यह एक सच्चाई है कि विज्ञान ने जो नए तर्क अर्जित किए हैं, उन्हें उचित रूप में प्रयोग किया जाए तो एकेश्वरवादी धर्म के निमंत्रण को उस उच्च स्तर पर प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके लिए इससे पहले चमत्कारों को प्रकट किया जाता था।

ज़मीन और आसमान में जो चीज़ें हैं, वह इसलिए हैं कि उन्हें देखकर आदमी ईश्वर को याद करे, लेकिन इंसान ने ख़ुद उन्हीं चीज़ों को ईश्वर समझ लिया। यह एक तरह की अवहेलना (disregard) थी। इसी तरह की अवहेलना मौजूदा ज़माने में विज्ञान की जानकारियों के बारे में सामने आ रही है। वैज्ञानिक खोजों से जो सच्चाइयाँ सामने आई हैं, वह सब ईश्वर के ईश्वरत्व का सबूत हैं। वह इंसान को ईश्वर की याद दिलाने वाली हैं, लेकिन मौजूदा ज़माने के नास्तिक विचारकों ने दोबारा एक अवहेलना की। उन्होंने विज्ञान की सच्चाई को ग़लत दिशा देकर यह किया कि जिस चीज़ से ईश्वर का सबूत निकल रहा था, उसे इन्होंने इस बात का सबूत बना दिया कि यहाँ कोई ईश्वर नहीं है, बल्कि सारी व्यवस्था एक यांत्रिक क्रिया (mechanical action) के तहत अपने आप हो रही है।

विज्ञान ने जिस कायनात की जो छानबीन की है, वह एक आख़िरी हद तक अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण कायनात है। आधुनिक खोजों ने साबित किया है कि हमारी दुनिया अव्यवस्थित तत्त्व का अर्थहीन अंबार नहीं है, बल्कि वह ऊँचे दर्जे का एक व्यवस्थित कारख़ाना है। दुनिया की सभी चीज़ें बहुत ज़्यादा समानता के साथ एक ऐसी दिशा की ओर यात्रा करती हैं, जो हमेशा उद्देश्यपूर्ण नतीजों को पैदा करने वाली हों। कायनात में व्यवस्था और उद्देश्यात्मकता की खोज स्पष्ट रूप से व्यवस्थापक की मौजूदगी का पता देती है। वह कायनात के पीछे ईश्वरीय कारीगरी

का पक्का सबूत है, लेकिन वर्तमान युग के नास्तिक विचारकों (atheist thinkers) ने यह किया कि इस वैज्ञानिक खोज की दिशा नास्तिकता की ओर मोड़ दी। उन्होंने कहा कि जो कुछ साबित हुआ है, वह बजाय ख़ुद घटना है, लेकिन इसका क्या सबूत कि वह कोई नतीजा (end) है। यह संभव है कि वह केवल एक प्रभाव (effect) हो यानी यह ज़रूरी नहीं है कि यहाँ कोई ज़हन हो, जो समझदारी और इरादे के तहत जानबूझकर घटनाओं को एक ख़ास अंजाम की ओर ले जा रहा हो। ऐसा भी हो सकता है कि घटनाओं की बुद्धिहीन क्रियाओं के प्रभाव से अपने आप चीज़ें अस्तित्व में आई हैं, जो संयोग से अर्थपूर्ण भी हो— यह अर्थहीन व्याख्या ख़ुद एक इरादे के तहत वजूद में आई है। फिर कितनी अजीब बात है कि अर्थपूर्ण कायनात को बिना इरादे की कारीगरी मान लिया जाए।

एक ओर विज्ञान के ज़ाहिर होने के बाद नास्तिक विचारकों ने बहुत बड़े पैमाने पर विज्ञान को नास्तिकता की दिशा देने की कोशिश की है। दूसरी ओर इसकी तुलना में धार्मिक विचारकों (religious thinkers) की कोशिशें इतनी ही कम हैं। पिछले सौ वर्ष के अंदर एक ओर हज़ारों की संख्या में उच्च ज्ञानात्मक पुस्तकें छपी हैं, जिनके द्वारा विज्ञान से ग़लत रूप से नास्तिकता को बरामद करने की कोशिश की गई है। दूसरी ओर धार्मिक विचारकों की पंक्ति में कुछ ही वर्णन योग्य ज्ञानात्मक कोशिशों का नाम लिया जा सकता है। इनमें से एक क़ीमती किताब सर जेम्स जींज़ की 'द मिस्टीरियस यूनिवर्स' (The Mysterious Universe) है। इस किताब में योग्य लेखक ने 'कार्यकारणता के सिद्धांत' (principles of causation) को शुद्ध वैज्ञानिक प्रामाणिकता के द्वारा ध्वस्त (demolished) कर दिया है, जिसे मौजूदा ज़माने में ईश्वर का मशीनी बदल समझ लिया गया था।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आख़िर में अनगिनत नई हक़ीक़तें इंसान के ज्ञान में आई हैं, जो बहुत ही उच्च स्तर पर धार्मिक विश्वासों की सच्चाई को साबित कर रही हैं, लेकिन अभी तक कोई ऐसा धार्मिक विचारक सामने नहीं आया, जो इन वैज्ञानिक जानकारियों को धार्मिक सच्चाइयों के सबूतों के तौर पर संकलित करे। अगर यह काम उच्च स्तर पर हो सके तो वह एकेश्वरवाद के निमंत्रण के पक्ष में एक ज्ञानात्मक चमत्कार प्रकट करने के अर्थ के समान होगा।

क़ुरआन से मालूम होता है कि अतीत में जितने पैग़ंबर आए, सबकी पैग़ंबरी पर उनके समय में लोगों ने संदेह किया (11:62)। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के साथ भी

शुरुआत में यही स्थिति सामने आई कि पहले जिन लोगों को हज़रत मुहम्मद ने संबोधित किया, उन लोगों ने आपकी पैग़ंबरी पर संदेह किया (क़ुरआन, 38:8)। हालाँकि इसी के साथ क़ुरआन में यह ऐलान किया गया कि आपको 'मक़ाम-ए-महमूद' यानी 'प्रशंसित स्थान' पर खड़ा किया जाएगा। इस ऐलान का मतलब यह था कि आपकी पैग़ंबरी शक के पड़ाव से गुज़रकर एक ऐसे पड़ाव पर पहुँचेगी, जब वह पूरी तरह से स्वीकृत पैग़ंबरी बन जाए। महमूद (तारीफ़ के लायक़) होना स्वीकार करने का आख़िरी दर्जा है।

हर पैग़ंबर जब निमंत्रण देना शुरू करता है तो वह अपनी क़ौम के अंदर एक ऐसी शख़्सियत होता है, जिसे लोग शक की नज़र से देखते हैं। "मालूम नहीं कि यह वास्तविक पैग़ंबर हैं या केवल दावा कर रहे हैं"— इस तरह के विचार लोगों के ज़हन में घूमते हैं और अंतिम समय तक ख़त्म नहीं हो पाते। पैग़ंबरी अपने शुरुआती दौर में सिर्फ़ दावा होती है। वह अपने दावे का ऐसा सबूत नहीं होती, जिसे मानने के लिए लोग मजबूर हो जाएँ।

यही कारण है कि जब भी कोई पैग़ंबर आया तो वह अपनी क़ौम की नज़र में विवादित हस्ती बन गया, क्योंकि पैग़ंबर की सच्चाई को जानने के लिए लोगों के पास उस समय उसका केवल दावा था। उसके हक़ में पक्के ऐतिहासिक सबूत अभी जमा नहीं हुए थे। इस तरह के सबूत हमेशा बाद में वजूद में आते हैं । आम तौर पर पैग़ंबरों का मामला इसके बाद के पड़ाव तक न पहुँच सका।

दूसरे पैग़ंबर विवादित दौर में शुरू हुए और विवादित दौर में ही उनकी समाप्ति हो गई, क्योंकि उनके बाद उनके संदेश के पीछे ऐसा गिरोह जमा न हो सका, जो उनकी ज़िंदगी और उनके कथन को पूरी तरह से सुरक्षित रख सके। दूसरे पैग़ंबर अपने ज़माने में लोगों के लिए इसलिए विवादित थे कि वे अभी अपने इतिहास की शुरुआत में थे, बाद के दौर में वे दोबारा विवादित हो गए, क्योंकि बाद में जो उनका इतिहास बना, वह इंसान के ज्ञान के स्तर पर प्रमाणित न था।

पैग़ंबरों की सूची में इस दृष्टि से केवल आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद एक अपवाद हैं। हालाँकि आपने दूसरे पैग़ंबरों की तरह अपनी पैग़ंबरी की शुरुआत विवादित दौर से की, लेकिन बाद के दौर में आपको इतनी असाधारण सफलता मिली कि ज़मीन के एक बड़े हिस्से में आपकी और आपके साथियों की सत्ता स्थापित हो गई। एक शताब्दी से भी कम समय में आपके धर्म ने एशिया और अफ़्रीक़ा की बड़ी शक्तियों को हराकर अपने अधीन कर लिया।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम को जितनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, वह सबमें विजेता रहे। आपने जितनी भविष्यवाणियाँ की, सब पूरी हुईं। जो भी ताक़त आपसे टकराई, वह टुकड़े-टुकड़े हो गई। आपकी ज़िंदगी में ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनके आधार पर समय में इतिहास में आपका रिकॉर्ड स्थापित हो गया। सारे पैग़ंबरों के इतिहास में आपको यह असाधारण सफलता मिली कि आपकी पैग़ंबरी विवादित पड़ाव से निकलकर प्रशंसित पड़ाव में पहुँच गई। आपकी बातें और आपके कारनामे, दोनों इस तरह सुरक्षित हालत में बरक़रार रहे कि किसी के लिए आपके बारे में शक करने की गुंजाइश नहीं।

मौजूदा ज़माने में सत्य धर्म के निमंत्रणकर्ताओं को एक ऐसा ख़ास मौक़ा (advantage) हासिल है, जो इतिहास के पिछले दौरों में किसी निमंत्रणकर्ता गिरोह को हासिल न था। वह यह कि आज हम इस हैसियत में हैं कि एकेश्वरवाद के निमंत्रण को प्रमाणित (established) पैग़ंबरी की सतह पर पेश कर सकें। जबकि इससे पहले एकेश्वरवाद का निमंत्रण केवल विवादित (controversial) पैग़ंबरी की सतह पर दिया जा सकता था।

दुसरे पैग़म्बरों के समुदाय अगर विवादित पैग़ंबरी के वारिस थे तो हम प्रशंसित पैग़ंबरी के वारिस हैं। मुसलमानों को विश्व-समुदायों के सामने सच की गवाही के जिस काम को अंजाम देना है, उसके लिए आज ईश्वर ने हर तरह के अनुकूल अवसरों को पूरी तरह से खोल दिया है। इसके बावजूद अगर मुसलमान इस गवाही के काम को अंजाम न दें या मज़हब की गवाही के नाम पर क़ौमी झगड़ें खड़े करने लगें तो मुझे मालूम नहीं कि क़यामत के दिन पूरी दुनिया के मालिक के सामने क्योंकर भारमुक्त (exonerated) हो सकते हैं।

नोट :- नवंबर, 1983 के आख़िरी हफ़्ते में लाहौर में क़ुरआनी सेमिनार हुआ। इस मौक़े पर लेखक को एक निबंध पढ़ने का निमंत्रण दिया गया। दृष्टिगत लेख इसी सेमिनार में पेश करने के लिए तैयार किया गया।

मतभेदों के बावजूद एकता

इंसानों के बीच हमेशा मतभेद बने रहते हैं। इसलिए एकता जब कभी पैदा होती है तो वह इस तरह पैदा नहीं होती कि लोगों में सिरे से कोई मतभेद न बचे। हक़ीक़त यह है कि मतभेद के बावजूद जुड़े रहने का नाम एकता है, न कि मतभेदों के बिना जुड़े होने का।

हज़रत मुहम्मद के साथियों के बीच ज़बरदस्त एकता पाई जाती थी। हक़ीक़त यह है कि इसी एकता के कारण वे इस योग्य हुए कि दुनिया में शानदार इस्लामी क्रांति ला सके, लेकिन यह एकता इस तरह पैदा नहीं हुई कि उनके बीच आपस में कोई मतभेद न था। हक़ीक़त यह है कि उनके बीच धार्मिक मामले और दुनियावी मामले, दोनों तरह की चीज़ों के बारे में बहुत ज़्यादा मतभेद पाए जाते थे, लेकिन इन सब निजी मतभेदों के बावजूद वे एक केंद्र-बिंदु पर जुड़े रहे। हज़रत मुहम्मद के साथियों ने मतभेदों के बावजूद अपने आपको इस्लामी उद्देश्य के इर्द-गिर्द इकट्ठा कर रखा था, न यह कि उनके बीच सिरे से कोई मतभेद ही न था।

'मतभेद के बावजूद जुड़े रहना' देखने में एक शब्द है, लेकिन यह सबसे बड़ी क़ुर्बानी है, जो मौजूदा दुनिया में कोई आदमी इसे अंजाम देता है। इस क़ुर्बानी के लिए उस उदारता की ज़रूरत है, जबकि आदमी दूसरे के फ़ायदे के लिए अपने नुक़सान को सहन कर ले। इसके लिए वह साहस चाहिए, जबकि निजी शिकायत के बावजूद वह दूसरे की श्रेष्ठता और कौशलता को स्वीकार कर सके। इसके लिए उस निस्वार्थता (selflessness) की ज़रूरत है, जबकि आदमी दूसरे की तुलना में अपने आपको छोटा होता हुआ देखे, फिर भी वह नकारात्मक मानसिकता (negative mentality) का शिकार न हो। इसके लिए उस उच्च योग्यता की ज़रूरत है, जबकि आदमी अपनी राय को अपने आप अहम समझते हुए दूसरे की राय की तुलना में उसे वापस ले ले। इसके लिए उस साहस की ज़रूरत है, जबकि आदमी दूसरे को अगली सीट पर बिठाकर ख़ुद पिछली सीट पर बैठने के लिए राज़ी हो जाए।

सामूहिक एकता आदमी की सबसे बड़ी क़ुर्बानी है। आदमी किसी चीज़ को उस वक़्त छोड़ता है, जबकि उसे उससे बड़ी कोई चीज़ मिल जाए। ईश्वरीय निमंत्रण का मिशन यही सबसे बड़ी चीज़ है। निमंत्रण व गवाही मानो इस दुनिया

में ईश्वर का प्रतिनिधित्व है। परलोक में सबसे बड़ा इनाम सच्चाई की दावत देने वालों के लिए रखा गया है। ज़ाहिर है कि इससे बड़ा कोई काम इस दुनिया में नहीं हो सकता। यही कारण है कि दावत में व्यस्त होने वाले लोग उस बड़ी क़ुर्बानी के लिए तैयार हो जाते हैं, जो किसी और तरीक़े से संभव नहीं।

ईश्वरीय निमंत्रण का मिशन किसी इंसान के लिए सबसे बड़ी चीज़ है। इसकी तुलना में सारी चीज़ें छोटी हैं। मुसलमानों के बीच वर्तमान मतभेद इसीलिए हैं कि मुस्लिम समुदाय के लोगों के सामने कोई बड़ा उद्देश्य नहीं। अगर उनके सामने कोई बड़ा उद्देश्य आ जाए तो वे ख़ुद ही छोटी-छोटी चीज़ों को छोड़ने के लिए राज़ी हो जाएँगे और नि:संदेह बड़े उद्देश्य के लिए छोटी–छोटी चीज़ों को छोड़ने के नतीजे ही का दूसरा नाम एकता है।

नोट :- यह लेख अरबी भाषा में ‘अल जामियातुल इस्लामिया मदीना मुनव्वरा’ में 2 मार्च, 1984 को पढ़कर सुनाया गया।

कायनात की गवाही

क़ुरआन में इनकार करने वालों की उस माँग का वर्णन है, कि वे पैग़ंबर से कहते हैं कि अगर तुम अपने इस वादे में सच्चे हो कि जो संदेश तुम लाए हो, वह ईश्वर की तरफ़ से है तो कोई चमत्कार दिखाओ। जवाब दिया कि ईमान का दारोमदार चमत्कारिक घटनाओं पर नहीं है, बल्कि इस पर है कि आदमी की आँख खुली हुई हो और वह निशानियों से सबक़ लेना जानता हो (क़ुरआन,6:34-36)। जिसमें यह योग्यता हो, उसे नज़र आएगा कि यहाँ वह 'चमत्कार' पहले से ही बहुत बड़े पैमाने पर मौजूद है, जिसकी वह माँग कर रहा है। आख़िर इससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है कि सारी कायनात अपने सभी अंगों सहित उस संदेश की सच्चाई की पुष्टि कर रही है, जिसकी तरफ़ ईश्वर का पैग़ंबर बुला रहा है और अगर आदमी ने अपने आपको अंधा बना रखा हो, वह घटनाओं से सबक़ लेने की कोशिश न करता हो तो बड़े-से-बड़ा चमत्कार भी कारगर नहीं हो सकता।

इस सिलसिले में दूसरी रचनाओं जैसे चिड़ियों और जानवरों की मिसाल दी गई है, जो इस दुनिया में इंसान के सिवा पाई जाती हैं। दूसरी जगह ज़मीन और आसमान को भी इन मिसालों में शामिल किया गया है (क़ुरआन, 17:44)। कहा गया कि अगर तुम सोच-विचार करो तो तुम्हारे लिए सीख हासिल करने और नसीहत लेने का काफ़ी सामान इनके अंदर मौजूद है, क्योंकि यह सब तुम्हारी तरह ही रचनाएँ हैं। इनको भी अपनी ज़िंदगी में एक ढंग अपनाना है, जिस तरह तुम्हें अपनाने के लिए कहा जा रहा है।

लेकिन तुम्हारी तुलना में, दुनिया में मौजूद चीज़ों का बेहद बड़ा हिस्सा होने के बावुजूद, उनका मामला पूरी तरह से तुमसे अलग है। वह एक ही निर्धारित रास्ते पर करोड़ों वर्ष से चल रही हैं। इनमें से कोई अपने निर्धारित रास्ते की थोड़ी-सी भी अवहेलना नहीं करती। यह सिर्फ़ इंसान है, जो एक

निर्धारित रास्ते को स्वीकार नहीं करता। हर आदमी चाहता है कि वह अपनी मनमानी राहों पर दौड़ता रहे।

पैग़ंबर की माँग तुमसे क्या है? यही तो है कि इस दुनिया का एक रचयिता और स्वामी है। तुम्हारे लिए सही तरीक़ा यह है कि तुम उद्दंडता (Arrogance) और अपनी मर्ज़ी को छोड़ दो और अपने रचयिता व स्वामी के अधीन हो जाओ। सोच-विचार करो तो इस निमंत्रण के सत्य होने की सारी ज़मीन और सारे आसमान और सभी जीव-जंतु गवाही दे रहे हैं (क़ुरआन, 24:41), क्योंकि जिस दुनिया में तुम हो, सब इसका बहुत बड़ा हिस्सा अपनी मर्ज़ी के बजाय पाबंदी का तरीक़ा अपनाए हुए है, तो तुम इसका बहुत ही छोटा-सा हिस्सा होकर इसके ख़िलाफ़ तरीक़ा अपनाने में सच के पैरोकार कैसे हो सकते हो।

शानदार कायनात का हर हिस्सा— चाहे वह छोटा हो या बड़ा— वही कर रहा है, जो उसे करना चाहिए। सब अपने एक ही नियुक्त मार्ग पर इतने सही तरीक़े से चले जा रहे हैं कि साफ़ मालूम होता है कि किसी सम्मानित और सर्वज्ञाता ने इनको बलपूर्वक इसका पाबंद कर रखा है (क़ुरआन, 36:38)। इतनी बड़ी कायनात में इंसान का अलग रास्ता अपनाना बता रहा है कि अवहेलना इंसान की ओर है, न कि बाक़ी कायनात की ओर (क़ुरआन, 3:83)।

सारी कायनात अपने असंख्य अंशों के साथ अत्यंत अनुकूलता से गतिविधि करती है। इनमें कभी आपस में टकराव नहीं होता। यह सिर्फ़ इंसान है, जो आपस में टकराव करता है। सारी कायनात अपनी अकल्पनीय गतिविधियों के साथ हमेशा बामक़सद अंजाम की ओर जाती है, लेकिन इंसान ऐसी कार्यवाहियाँ करता है, जो तबाही और बर्बादी पैदा करने वाली हों।

दो तरह के पानी अपनी-अपनी सीमा निर्धारित किए हुए हैं। उनमें से कोई भी एक-दूसरे की सीमा को नहीं तोड़ता, यहाँ तक कि साँडों का दल भी अपनी-अपनी सीमाओं को निर्धारित कर लेता है। हर साँड अपनी सीमा के अंदर खाता-पीता है, दूसरे साँड की सीमा में नहीं घुसता, लेकिन इंसान किसी हदबंदी को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। शहद की मक्खियाँ बहुत हद तक अनुशासन और कार्य-विभाजन के साथ अपनी रचनात्मक गतिविधियों को अंजाम देती हैं, लेकिन इंसान अनुशासन और व्यवस्था को तोड़ता है। चींटियाँ और चिड़ियाँ भोजन को हासिल करने में अपनी मेहनत पर भरोसा करती हैं। वे किसी से छीना-झपटी नहीं करतीं, लेकिन एक इंसान

दूसरे इंसान का शोषण (exploitation) करता है।

कोई शेर या भेड़िया अपनी जाति के जानवर को नहीं फाड़ता, लेकिन एक इंसान दूसरे इंसान का ख़ून बहाता है। कोई जानवर, यहाँ तक कि साँप और बिच्छू भी बिना कारण किसी पर हमला नहीं करते। वह हमला करते हैं तो केवल अपने बचाव के लिए, लेकिन एक इंसान दूसरे इंसान के ऊपर एकतरफ़ा आक्रामक कार्यवाहियाँ करता है। सभी जानवर ज़रूरत के अनुसार खाते हैं, ज़रूरत के अनुसार शारीरिक संबंध बनाते हैं और ज़रूरत के अनुसार घर बनाते हैं, लेकिन इंसान हर चीज़ में फ़िज़ूलख़र्ची और ग़लत राह पर चलना और ग़ैर-ज़रूरी दिखावों का तरीक़ा अपनाता है।

सभी जानवर अपने काम के दायरे में अपने आपको व्यस्त रखते हैं, लेकिन इंसान अपने काम के दायरे को छोड़कर दूसरे के दायरे में हस्तक्षेप (intervention) करता है। एक चरवाहे की पचास बक़रियाँ जंगल में चरते हुए हज़ारों भेड़-बक़रियों से मिल जाएँ और इसके बाद उनका चरवाहा एक जगह खड़े होकर आवाज़ दे तो उसकी सारी बक़रियाँ निकल-निकलकर उसके पास आ जाती हैं, मगर इंसान का हाल यह है कि उसे ईश्वर और पैग़ंबर की तरफ़ बुलाया जाए तो वह सुनने और समझने के बाद भी उसकी पुकार की तरफ़ नहीं दौड़ता।

इंसान सारी कायनात का इससे भी कहीं ज़्यादा छोटा हिस्सा है, जितना पूरी ज़मीन की तुलना में सरसों का एक दाना। फिर इंसान के लिए इसके सिवा कोई रास्ता कैसे सही हो सकता है, जो बहुत बड़ी कायनात का रास्ता है। अगर इतने बड़े सबूत के बावजूद आदमी अपने लिए अलग रास्ते का चुनाव करता है तो मौजूदा दुनिया में वह अपने आपको अधिकारहीन (rightless) साबित कर रहा है। इसके बाद उसका अंजाम केवल यही हो सकता है कि उसे कायनात में बेजगह कर दिया जाए। कायनात की सारी चीज़ें उसके साथ सहयोग करने से इनकार कर दें। कायनात की सारी कृपाओं को उससे छीनकर उसे हमेशा के लिए वंचित कर दिया जाए।

आदमी जिस कायनात का हमसफ़र बनने के लिए तैयार नहीं, उसे क्या अधिकार है कि वह उस कायनात की चीज़ों से फ़ायदा उठाए। इसके बाद बिल्कुल स्वाभाविक रूप से यह अंजाम होना चाहिए कि कायनात को उसकी सारी कृपाओं के साथ केवल उन इंसानों को दे दिया जाए, जो उसका हमसफ़र बनें; जिन्होंने

अपने रचयिता की अधीनता उसी तरह स्वीकार की, जिस तरह सारी कायनात कर रही थी। इसके सिवा वे इंसान, जिन्होंने बग़ावत और केवल अपनी राय का इस्तेमाल किया, उनको न इस दुनिया की रोशनी में हिस्सेदार बनने का अधिकार है और न ही इसके हवा और पानी में। वे इस दुनिया में न अपने लिए मकान बनाने का अधिकार रखते हैं और न खाने और आराम करने का।

न्याय की यही माँग है कि कायनात अपनी स्वर्गिक संभावनाओं (heavenly possibilities) के साथ केवल पहले दल के हिस्से में आए और दूसरे दल को यहाँ की सारी बेहतरीन चीज़ों से वंचित करके छोड़ दिया जाए।

इस्लाम में नैतिकता का विचार

धर्मशास्त्र (theology) और दर्शनशास्त्र (philosophy) दोनों का संयुक्त विषय नैतिकशास्त्र (morality) है; लेकिन दोनों के तार्किक सिद्धांत (logic) में एक बुनियादी अंतर है। धर्मशास्त्र नैतिक नियमों को ईश्वर के आदेश के रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि दर्शनशास्त्र 'क्या' के साथ 'क्यों' के सवाल की जाँच-पड़ताल भी करना चाहता है यानी यह कि एक चीज़ नैतिक रूप से सही है तो वह क्यों सही है। इसी तरह एक चीज़ नैतिक रूप से सही नहीं है तो क्यों सही नहीं है।

इस नज़रिये ने दोनों के बीच एक बड़ा अंतर पैदा कर दिया है। वह अंतर यह है कि धर्म में नैतिकता एक ज्ञात और निर्धारित चीज़ का नाम है, जिसमें बुनियादी रूप से किसी विरोध की गुंजाइश नहीं। इसका ईश्वर का आदेश होना इसे एक अंतिम रूप दे देता है। इसके विपरीत दर्शनशास्त्र में चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के यूनानी दार्शनिकों (philosophers) से लेकर बीसवीं शताब्दी के आधुनिक पश्चिमी दार्शनिकों तक कभी ख़त्म न होने वाले वाद-विवाद जारी हैं और आज तक यह फ़ैसला न हो सका कि इंसान के व्यवहार के लिए नैतिक कसौटी (criteria of ethics) क्या होनी चाहिए। हर दार्शनिक ने अपनी एक वैचारिक पाठशाला बना दी, लेकिन वह दुनिया को कोई दृढ़ नैतिकता का नियम न दे सका।

हमारा दृष्टिकोण यह है कि इंसानी सीमाएँ (limitations) इसमें रुकावट हैं कि इंसान 'क्यों' के सवाल को हल कर सके। इसलिए हमने दार्शनिक वाद-विवाद के बजाय व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है। इस लेख में हमारा उद्देश्य केवल यह है कि इस्लाम में नैतिकता की जो सैद्धांतिक और बुनियादी कल्पना दी गई है, उसका साधारण शैली में वर्णन करें।

कायनात की सतह पर

क़ुरआन में यह वर्णन है कि ईश्वर ने सात आसमान ऊपर-नीचे पैदा किए। तुम ईश्वर की रचना में कोई गड़बड़ न देखोगे। तुम फिर निगाह डालकर देखो, कहीं तुम्हें कोई गड़बड़ नज़र आती है। तुम दोबारा निगाह डालकर देख लो। आख़िरकार तुम्हारी निगाह तुच्छ और विवश होकर तुम्हारी ओर लौट आएगी। (67:4)

ईश्वर ने एक बहुत बड़ी कायनात पैदा की। इस कायनात में हर वक़्त अनगिनत गतिविधियाँ जारी हैं, लेकिन सारी गतिविधियाँ बहुत ही संगठित रूप से हो रही हैं। कहीं कोई अनियमितता (irregularity) नहीं। किसी का काम यहाँ उच्च मापदंड से कम नहीं।

ईश्वरीय नैतिकता

इंसान को ईश्वर ने इस व्यवस्था की पाबंदी से प्रत्यक्ष रूप से आज़ाद रखा है, लेकिन यह आज़ादी केवल परीक्षा की नीति के आधार पर है; वरना इंसान से भी ठीक वही आचरण वांछित है, जो बाक़ी कायनात में ईश्वर ने स्थापित कर रखा है। अंतर यह है कि बाक़ी कायनात में यह आचरण ईश्वर के सीधे कंट्रोल के तहत क़ायम है और इंसान के जीवन में इसे ख़ुद इंसान के अपने इरादे के तहत क़ायम होना चाहिए। यहाँ मतलब है उस हदीस का, जिसमें कहा गया है कि ईश्वर की नैतिकता (standards of conduct) को अपनी नैतिकता बनाओ।

इस्लामी नैतिकता की बुनियाद उस कल्पना पर स्थापित है कि नैतिकता एक कायनाती हक़ीक़त है। जो नैतिकता बाक़ी कायनात के लिए निर्धारित की गई है, वही नैतिकता इंसान से भी वांछित है। इंसान के लिए बाक़ी कायनात एक नैतिक आदर्श की हैसियत रखती है। एक अच्छे इंसान के लिए भी वही बात सही है, जो मिगुएल डी सेरवांते (Miguel de Cervantes) ने एक अच्छे चित्रकार के बारे में कही है।

> "Good painters imitate nutrue; bad ones vomit it."
>
> "अच्छे चित्रकार प्रकृति की नक़ल करते हैं और बुरे चित्रकार उसको उगल देते हैं।"

इंसान के अलावा जो कायनात है, उसे ईश्वर ने एक क़ानून का पाबंद बना

रखा है। वह अनिवार्य रूप से इसके अनुसार काम करती है। कायनात के इस क़ानून को विज्ञान की भाषा में प्राकृतिक नियम (law of nature) कहा जाता है। क़ुरआन में इसी बात को इस तरह कहा गया है कि ज़मीन और आसमान ईश्वर के आदेश के तहत हैं (41:5) और फिर यही माँग इंसान से की गई है कि वह ईश्वर के आदेश के मातहत बनकर रहे (3:154)।

हक़ीक़त यह है कि ईश्वर का एक ही क़ानून है, जिसकी पैरवी कायनात और इंसान, दोनों से वांछित है। बाक़ी कायनात बलपूर्वक इस क़ानून को अपनाए हुए है और इंसान को ख़ुद अपने इरादे के तहत इस क़ानून को अपनाना है।

इस्लामी नैतिकता का यह नियम क़ुरआन की निम्नलिखित आयत में मिलता है—

> "क्या लोग ईश्वर के धर्म के सिवा कोई और धर्म चाहते हैं। हालाँकि उसी के अधीन है, जो कोई ज़मीन और आसमान में है— ख़ुशी से या नाख़ुशी से और सब उसी की तरफ़ लौटाए जाएँगे।" (3:83)

क़ुरआन की इस आयत से साफ़ तौर पर मालूम होता है कि ईश्वर ने बाक़ी कायनात की व्यवस्था जिन नियमों पर व्यावहारिक रूप से स्थापित कर रखी है, उसी के अनुसार वह इंसानी ज़िंदगी की व्यवस्था को भी देखना चाहता है। इंसानी समाज को भी उन्हीं नियमों में ढल जाना चाहिए, जिसका नमूना कायनाती सतह पर हर वक़्त दिखाया जा रहा है।

एकता व संगठन

क़ुरआन में हुक्म दिया गया है कि ईश्वर का एक निर्धारित मार्ग है (6:154)। तुम इसी ईश्वरीय मार्ग पर चलो। यही शब्द क़ुरआन में शहद की मक्खी के लिए भी इस्तेमाल हुआ है। कहा गया है कि ईश्वर ने शहद की मक्खी को हुक्म दिया कि तुम ईश्वर के मार्ग पर चलो (16:69)। इससे मालूम हुआ कि शहद की मक्खी जिस तरह काम करती है, वह ईश्वर का स्वीकृत मार्ग है। इसी मार्ग को इंसान को भी फ़ॉलो करना है।

शहद की मक्खी की व्यवस्था सामूहिक संगठन का एक आदर्श उदाहरण है। वह अपना पूरा काम ऊँचे दर्जे की संयुक्त कार्यवाही के साथ अंजाम देती है। क़ुरआन के अनुसार यह संगठन और संयुक्त व्यवहार ईश्वर

द्वारा स्वीकृत व्यवहार है। इंसान को चाहिए कि वह अपनी सामाजिक ज़िंदगी में इसी को अपनी सांस्कृतिक अवस्थाओं के अनुसार अपनाए। शहद की तैयारी में लाखों मक्खियाँ शामिल रहती हैं, लेकिन वे बेइंतिहा तालमेल के साथ सारे काम को अंजाम देती हैं। इंसान को भी अपनी ज़िंदगी में यही तरीक़ा अपनाना चाहिए।

हस्तक्षेप नहीं

"सूरज के वश में नहीं कि वह चाँद को जा पकड़े और न रात के लिए यह है कि वह दिन से पहले आ जाए। हर एक अपने-अपने दायरे (orbit) में चल रहे हैं।" (क़ुरआन, 36:40)

इस आयत में ईश्वर के एक क़ानून की ओर संकेत किया गया है, जो उसने ग्रहों और तारों की दुनिया में स्थापित कर रखा है। वह क़ानून यह है कि हर तारा या ग्रह अपने-अपने दायरे में गतिविधि करे। वे किसी दूसरे ग्रह के दायरे में प्रवेश न करें। यह मानो ईश्वर के पसंदीदा सामाजिक नियम का एक भौतिक उदाहरण है। ईश्वर तारों और ग्रहों के द्वारा उस क़ानून का प्रदर्शन कर रहा है, जिसे वह इंसान की ज़िंदगी में जागरूक रूप से देखना चाहता है यानी यह कि हर आदमी अपने-अपने दायरे में रहते हुए काम करे, वह कभी दूसरे आदमी के दायरे में प्रवेश न करे।

क़ुरआन के इस नियम का एक पश्चिमी देश के क़िस्से में एक बहुत सुंदर उदाहरण है। कहा जाता है कि, जब उस देश को राजनीतिक आज़ादी प्राप्त हुई, तो एक आदमी ख़ुशी के साथ सड़क पर निकला। वह अपने दोनों हाथ ज़ोर-ज़ोर से हिलाता हुआ सड़क पर चल रहा था। इतने में उसका हाथ एक राहगीर की नाक से टकरा गया। राहगीर ने ग़ुस्सा होते हुए कहा कि तुमने मेरी नाक पर क्यों मारा? आदमी ने जवाब दिया कि आज मेरा देश आज़ाद है। अब मैं आज़ाद हूँ, जो चाहे करूँ। राहगीर ने बहुत धैर्य के साथ जवाब दिया कि तुम्हारी आज़ादी वहाँ ख़त्म हो जाती है, जहाँ मेरी नाक शुरू होती है।

'Your freedom ends where my nose begins'

इस दुनिया में हर आदमी काम करने के लिए आज़ाद है, लेकिन यह आज़ादी असीमित नहीं है। हर आदमी के लिए ज़रूरी है कि वह अपने सीमित दायरे में अमल करे। वह दूसरे की आज़ादी में दख़लअंदाज़ी किए बिना अपनी आज़ादी का इस्तेमाल करे। यह ईश्वरीय नैतिकताओं की एक धारा है। क़ुरआन

में शाब्दिक रूप से इसका हुक्म दिया गया है और आसमान के तारों और ग्रहों की परिक्रमा को अपने-अपने दायरे का पाबंद बनाकर इस नैतिक नियम का प्रदर्शन (demonstration) किया जा रहा है।

स्वीकार करना

क़ुरआन की एक आयत इस तरह है— "फिर तुम्हारे दिल सख़्त हो गए, तो वह पत्थर की तरह सख़्त हैं या उससे भी ज़्यादा सख़्त और कुछ पत्थर ऐसे हैं कि उनसे नहरें फूटकर निकलती हैं और कुछ पत्थर ऐसे हैं कि वह फट जाते हैं, फिर उनमें से पानी निकल आता है और कुछ पत्थर वह हैं, जो ईश्वर के डर से गिर पड़ते हैं और ईश्वर तुम्हारे कर्मों से अनजान नहीं है।" (2:74)

यह आयत प्रतीकात्मक भाषा (symbolic language) में है। इससे मालूम होता है कि पत्थर के कुछ गुण उदाहरण के रूप में इंसान के लिए नैतिकता का सबक़ हैं। पहाड़ों में पत्थरों के बीच से झरने फूटते हैं और उनसे दरिया बह निकलते हैं। यह उस इंसानी नैतिकता का उदाहरण है कि इंसान को सख़्त दिल नहीं होना चाहिए। उसके अंदर यह योग्यता होनी चाहिए कि जब कोई सच्चाई उसके सामने आए तो उसका दिल उसे स्वीकार करने के लिए खुल जाए। कोई इंसानियत का मौक़ा आए तो उसका दिल उसे महसूस करके तड़प उठे। जिस तरह पहाड़ में पत्थरों के बीच पानी का झरना उबल पड़ता है, उसी तरह इंसान के दिल से सत्य की स्वीकृति का झरना उबल पड़ना चाहिए।

इसी तरह पत्थरों का पहाड़ से गिरना (land slide) इस बात का उदाहरण है कि इंसान के सामने जब ईश्वर का आदेश आए तो उसके सामने उसे समर्पण (surrender) कर देना चाहिए। उसे विद्रोह के बजाय स्वीकृति का अंदाज़ अपनाना चाहिए। जिस तरह पत्थर प्रकृति के क़ानून के आगे गिर पड़ते हैं, उसी तरह इंसान को ईश्वर के क़ानून के आगे पूरी तरह झुक जाना चाहिए।

नरम बातचीत

क़ुरआन में बताया गया है कि चिड़ियाँ ईश्वर की प्रशंसा करती हैं (24:41)। दूसरी ओर बताया गया है कि गधे की आवाज़ सबसे बुरी आवाज़ होती है, इसलिए जब तुम बात करो तो गधे की तरह मत चीख़ो; बल्कि धीमी आवाज़ से बोलो (31:19)।

इससे मालूम हुआ कि ईश्वर को वह आवाज़ पसंद है, जिसमें चिड़ियों की चहचाहट जैसी मिठास हो। ईश्वर को वह आवाज़ पसंद नहीं, जिसमें आदमी गधे की तरह ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगे और सुनने वाले के लिए सुनने में तकलीफ़ का कारण बने।

इंसान के शरीर में ज़ुबान बहुत ही मूल्यवान अंग है। इसी ज़ुबान के द्वारा आदमी अपने विचार को दूसरे के सामने प्रकट करता है। इसी के द्वारा दो आदमी आपस में विचार-विमर्श करते हैं। फिर भी ज़ुबान को इस्तेमाल करने के दो भिन्न रूप हैं। एक यह कि आदमी प्रेम और भलाई की भावना से बोले। वह जब बोले तो इसलिए बोले कि वह दूसरों तक वह बात पहुँचा देना चाहता है, जो उसके नज़दीक बेहतरीन बात है। उसकी ज़ुबान हमेशा भलाई की ज़ुबान हो। इसी के साथ उसके बात करने का ढंग गंभीर और समझदारी वाला हो। वह जो बात कहे, शराफ़त और धैर्य के साथ कहे।

इसके विपरीत ज़ुबान को इस्तेमाल करने का दूसरा रूप वह है, जिसका एक उदाहरण गधे के रूप में पाया जाता है यानी मुँह से ऐसी आवाज़ निकालना, जो सुनने वालों के लिए तकलीफ़ का कारण बने। क़ुरआन के अनुसार आदमी के लिए अनिवार्य है कि वह अपनी ज़ुबान को अर्थहीन (meaningless) शोरगुल से बचाए। वह तंज़ (satire) और बुरी बात कहने से बचे। वह अपनी ज़ुबान को ऐसे अंदाज़ से इस्तेमाल न करे, जिससे सुनने वालों को बुरा न लगे। इंसान के बोल चिड़ियों की चहचाहट की तरह होने चाहिए, न कि गधे की चीख़ की तरह।

माफ़ करना और अनदेखा करना

पैग़ंबर यूसुफ़ के सौतेले भाइयों ने यूसुफ़ के साथ जो बुरा व्यवहार किया, वह स्वाभाविक रूप से यूसुफ़ के पिता पैग़ंबर याक़ूब के लिए बहुत ही तकलीफ़ देने वाला था। उन्हें यूसुफ़ के भाइयों से बहुत ज़्यादा शिकायत हुई, लेकिन इस शिकायत का ग़ुस्सा उन्होंने यूसुफ़ के भाइयों पर नहीं निकाला, बल्कि कहा कि मैं अपने दुख-दर्द की शिकायत केवल ईश्वर से करता हूँ (क़ुरआन, 12:86)। याक़ूब को ग़ुस्सा इंसान की ओर से पैदा हुआ था, लेकिन उसे उन्होंने ईश्वर की ओर मोड़ दिया।

यह दिशा मोड़ना (diversion) ठीक वही चीज़ है, जो भौतिक संसार

(material world) में बहुत ही सफलता के साथ स्थापित है। बारिश के मौसम में जो पानी बरसता है, वह अक्सर बहुत ज़्यादा होता है। अगर उसकी सारी मात्रा खेतों और आबादियों में रह जाए तो ज़बरदस्त नुक़सान हो। ऐसे मौक़ों पर प्रकृति यह करती है कि पानी की ज़रूरी मात्रा को खेतों और आबादियों में छोड़ देती है और उसके बाद पानी की सारी अतिरिक्त मात्रा को नालों और नदियों की ओर मोड़ (divert) देती है। प्रकृति के इसी नियम को इंसान को सामूहिक ज़िंदगी में भी अपनाना है। वह यह कि भावनाओं की सारी हानिकारक मात्रा को ईश्वर की ओर मोड़ दिया जाए।

अलग-अलग इंसान जब मिलकर रहते हैं तो उनके बीच बार-बार शिकायतें पैदा होती हैं। एक के अंदर दूसरे के ख़िलाफ़ कड़वाहटें उभरती हैं। यह शिकायतें और कड़वाहटें जिसके ख़िलाफ़ पैदा हुई हैं, अगर वह उसी के ख़िलाफ़ निकलने लगें तो सारा समाज लड़ाई-झगड़े का मैदान बन जाए। इन हालात में इंसान को वही करना है, जो प्रकृति करती है यानी सारी बढ़ी हुई भावनाओं को ईश्वर के ख़ाने में डाल देना। ऐसे सभी मामलों को ईश्वर के हवाले करके अपने सकारात्मक निर्माण में लग जाना। प्रकृति ऐसे व्यवहार से यह सीख देती है कि हर आदमी के पास एक दिशा को मोड़ने वाला तालाब (diversion pool) होना चाहिए, जिसमें वह दूसरों के ख़िलाफ़ पैदा होने वाली अपनी नकारात्मक भावनाओं को मोड़ दिया करे और इस तरह अपने आपको संतुलन की स्थिति में रखे।

बुराई के बदले भलाई

क़ुरआन में ईश्वर के नेक बंदों के इस गुण का वर्णन किया गया है कि जब उन्हें ग़ुस्सा आता है तो वे माफ़ कर देते हैं (42:37)। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने अपने अनुयायियों को यह हुक्म दिया कि जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार करे, तुम उससे अच्छा व्यवहार करो। दूसरे शब्दों में, आदमी को दूसरे से बुराई मिले, तब भी वह दूसरों को भलाई लौटाए। उसे जब उत्तेजित (provoke) किया जाए, तब भी वह उत्तेजित न हो।

यह उच्च नैतिकता ठीक वही है, जिसका उदाहरणात्मक नमूना ईश्वर ने पेड़ के रूप में भौतिक संसार में स्थापित किया हुआ है। इंसान और पेड़, दोनों एक ही दुनिया में एक-दूसरे के आसपास रहते हैं। इंसान का तरीक़ा यह है कि जब वह साँस लेता है तो वह वातावरण से ऑक्सीजन लेता है और अपने अंदर से

कार्बन डाइऑक्सइड (carbon dioxide) बाहर निकालता है।

अगर पेड़ भी यही करें तो हमारी दुनिया हानिकारक गैस से भर जाए और रहने के योग्य न रहे, लेकिन पेड़ इंसान के बिल्कुल विपरीत मामला करता है। पेड़ बाहर से कार्बन डाईऑक्साइड ले लेता है और अपने अंदर से ऑक्सीजन निकालकर वातावरण में शामिल करता है, जो इंसान और अन्य जीव-जंतुओं के लिए बहुत ही ज़रूरी है।

क़ुरआन जिस नैतिकता की माँग इंसान से करता है, उसका एक मॉडल उसने पेड़ की दुनिया में व्यावहारिक रूप से स्थापित की हुई है। यह नैतिकता, जो पेड़ की दुनिया में भौतिक स्तर पर स्थापित है, उसी को इंसान अपनी ज़िंदगी में जागरूक स्तर पर अपनाता है। जो नैतिक कसौटी ईश्वर ने बाक़ी दुनिया में सीधे तौर पर अपने बल पर स्थापित कर रखी है, उसी नैतिक कसौटी को इंसानी दुनिया में ख़ुद इंसान को अपने इरादे से स्थापित करना है, ताकि ईसा मसीह के शब्दों में, "ईश्वर की मर्ज़ी जिस तरह आसमान पर पूरी होती है, उसी तरह ज़मीन पर भी पूरी हो।"

वह नैतिकता यह है कि दूसरे आदमी से अगर आपको नफ़रत मिले, तब भी आप उसे मुहब्बत लौटाएँ। दूसरे से आपको तकलीफ़ पहुँचे तो आप उसे अपनी तरफ़ से आराम पहुँचाने की कोशिश करें। लोग आपको ग़ुस्सा दिलाएँ तो आप उन्हें माफ़ कर दें। लोग नकारात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करें, तब भी आप सकारात्मक व्यवहार से उनका जवाब दें। आपकी नैतिकता यह नहीं होनी चाहिए कि आप कार्बन देने वाले को कार्बन दें, बल्कि आपकी नैतिकता यह होनी चाहिए कि जो आदमी आपको कार्बन दे, उसे भी आपकी ओर से ऑक्सीजन मिले।

सारांश

हक़ीक़त यह है कि कर्म की जो कसौटी बहुत बड़ी कायनात में ईश्वर अपने सीधे कंट्रोल के तहत सामने ला रहा है, वही कसौटी इंसान को अपनी निजी ज़िंदगी में निजी कंट्रोल के तहत वजूद में लानी है। जो बात ईश्वर ने बाक़ी दुनिया में भौतिक स्तर पर क़ायम की हुई है, उसी बात को इंसानी दुनिया में इंसानी सतह पर क़ायम करना है।

कायनाती सतह पर जो चीज़ लोहे के रूप में पाई जाती है, वह इंसानी सतह

पर पक्के किरदार के रूप में वांछित है। कायनाती सतह पर जो चीज़ पथरीली ज़मीन से झरने के रूप में बह निकलती है, वह इंसान से नरम स्वभाव के रूप में वांछित है। कायनाती सतह पर जो चीज़ अपेक्षित चरित्र (predictable character) के रूप में पाई जाती है, वह इंसानी सतह पर वचन को पूरा करने के रूप में वांछित है। कायनाती सतह पर जो चीज़ ख़ुशबू और रंग के रूप में पाई जाती है, वह इंसानी सतह पर अच्छे व्यवहार और वचनबद्धता के रूप में वांछित है।

पेड़ ख़राब हवा को ले लेता है और इसके बदले शुद्ध हवा हमारी ओर लौटा देता है। यही बात इंसानी सतह उस नियम के रूप में वांछित है कि "जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार करे, उसके साथ तुम अच्छा व्यवहार करो।" कायनात में कोई चीज़ किसी दूसरे की काट में नहीं लगी हुई है। हर कोई पूरी एकाग्रता के साथ अपना-अपना हिस्सा अदा करने में व्यस्त है। यही चीज़ इंसानी सतह पर इस तरह वांछित है कि वह हमेशा सकारात्मक संघर्ष करे, नकारात्मक अवस्था की कार्यवाहियों से वह पूरी तरह परहेज़ करे। कायनात में रीसाइकल (recycle) और डीकंपोज़ (decompose) करने का नियम काम कर रहा है। अवशेष दोबारा इस्तेमाल करने के लिए गैस में परिवर्तित कर दिए जाते हैं। पत्ती पेड़ से गिरकर नष्ट नहीं होती, बल्कि खाद बन जाती है। यही चीज़ इंसानी ज़िंदगी में इस तरह वांछित है कि इंसान की ख़र्च की हुई दौलत दोबारा इंसान के लिए फ़ायदेमंद बने। एक इंसान का छेड़ा हुआ संघर्ष दूसरे इंसानों को अच्छे फल का तोहफ़ा दे।

कायनात में बहुत बड़े स्तर पर अनगिनत काम हो रहे हैं। हर हिस्सा बहुत ही अच्छी तरह और पाबंदी के साथ अपनी ड्यूटी को अंजाम देने में लगा हुआ है, लेकिन किसी को यहाँ ज़ाहिरी बदला नहीं मिलता। यही चीज़ इंसान से इस तरह वांछित है कि वह पूरी तरह से अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में लगा रहे, बिना इसके कि दुनिया में उसे उसके काम का कोई मुआवज़ा मिलने वाला हो। ऊँचा पहाड़ और सारी खड़ी हुई चीज़ें अपना साया ज़मीन पर डाल देती हैं। यही चीज़ इंसानी ज़िंदगी में इस तरह वांछित है कि हर आदमी विनम्रता का तरीक़ा अपनाए। कोई आदमी घमंड न करे। कोई आदमी दूसरे आदमी की तुलना में अपने आपको बड़ा न समझे।

इस्लामी नैतिकता हक़ीक़त में कायनाती नैतिकता का दूसरा नाम है। कायनाती सतह पर यह नैतिक कसौटी विवेक के बग़ैर स्थापित है और मानव स्तर पर यह नैतिक कसौटी विवेक के अधीन स्वयं अपने इरादे से स्थापित होती है।

वैचारिक क्रांति

‘अल-मअहदुल इल्मी लिलफ़िकरिल इस्लामी’ का अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार (कुआलालंपुर; जुलाई, 1984) मुस्लिम नवयुवकों में एक नए वैचारिक दौर का प्रतीक है। मअहद के चिंतन का सारांश उसके परिचय-पत्र में यह बताया गया है कि मौजूदा दौर में मुस्लिम समुदाय की असफलता का कारण ख़ुद उसके अंदर है, न कि उसके बाहर। वह कारण है— ज़रूरी बुनियाद तैयार किए बिना व्यावहारिक कार्यवाही करना। मअहद के नज़दीक पहली ज़रूरी चीज़ वह है, जिसे ‘इस्लामियतुल मआरिफ़ह’ (Islamization of knowledge) के शब्दों में बयान किया गया है। कहा गया है कि मुसलमानों की मौजूदा परेशानी को हल करने के सिलसिले में पहला क़दम यह है कि ज्ञान को इस्लामी बनाया जाए।

> The first step towards a solution of the present crisis of the Ummah is the Islamization of knowledge.

लगभग 12 वर्ष पहले मैंने एक लेख लिखा था। यह लेख अरबी भाषा में अगस्त, 1973 में प्रकाशित हुआ। इस लेख में विस्तार के साथ यह दिखाया गया था कि राजनीतिक या क़ानूनी क्रांति से पहले वैचारिक क्रांति (Ideological revolution) ज़रूरी है। मुसलमानों की व्यावहारिक समस्याएँ केवल उस समय हल होंगी, जब हम वैचारिक क्रांति के द्वारा इसके अनुकूल माहौल बना चुके हों।

यहाँ मैं यह भी जोड़ना चाहता हूँ कि यह ठीक वही बात है, जो ख़ुद क़ुरआन के ज़रिये हमारा बहुत ही महत्वपूर्ण सामूहिक कर्तव्य साबित होता है। क़ुरआन में दो जगह पर (2:193, 8:39) यह हुक्म दिया गया है—

> “और उनसे जंग करो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन ईश्वर के लिए हो जाए।”

जैसा कि अब्दुल्ला बिन उमर के स्पष्टीकरण से मालूम होता है कि इस

आयत में फ़ितने का मतलब आक्रामक अनेकेश्वरवाद है। उन्होंने कहा कि उस समय इस्लाम थोड़ा था, इसलिए जब कोई आदमी एकेश्वरवादी धर्म को अपनाता तो अनेकेश्वरवादी लोग उसे सताते। किसी को वे क़त्ल कर देते, किसी को ज़ंजीरों में बाँध देते और किसी को यातना देते। इस्लाम जब बहुत ज़्यादा फैल गया और यह स्थिति बाक़ी न रही कि एकेश्वरवादी आस्था के आधार पर किसी को सताया जाए। (तफ़्सीर इब्ने-कसीर)

इससे यह पता चला कि यहाँ 'फ़ितना' का मतलब वही चीज़ है, जिसे उत्पीड़न (persecution) कहा जाता है यानी अलग आस्था रखने के आधार पर किसी को सताना। प्राचीनकाल में अनेकेश्वरवाद को प्रभुत्व प्राप्त था, इसलिए अनेकेश्वरवादी हज़ारों वर्ष तक यह करते रहे कि वे एकेश्वरवाद में आस्था रखने वालों को सताते।

आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद का मिशन यह था, जिसे आपने अपनी ज़िंदगी में पूरा किया कि आप इस विरोधपूर्ण परिस्थिति को ख़त्म कर दें। वे अनेकेश्वरवाद के सामान्य प्रभुत्व को हमेशा के लिए मिटा दें, ताकि ईश्वर के बंदों के लिए एकेश्वरवाद की आस्था अपनाने में जो चीज़ रुकावट बन रही है, वह रुकावट बाक़ी न रहे। इसलिए पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने अपने बारे में कहा—

"मैं अहमद हूँ और मैं कुफ़्र* को मिटाने वाला हूँ और मेरे ज़रिये ईश्वर कुफ़्र को मिटाएगा।" (सही अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 4896)

मौजूदा दौर में अनेकेश्वरवाद की आक्रामक हैसियत समाप्त हो चुकी है, लेकिन विचार कीजिए कि असल स्थिति दोबारा एक नए रूप में लौट आई है। आज दोबारा इंसान के लिए एकेश्वरवादी धर्म स्वीकार करने में बाधाएँ पैदा हो गई हैं, लेकिन आज इस धर्म से रोकने वाला तत्त्व अपना कार्य वैचारिक शक्ति के बल पर कर रहा है, न कि तलवार के बल पर।

आज का 'फ़ितना' आधुनिक नास्तिकतावादी विचारों का फ़ितना है। जो काम पुराने ज़माने में अनेकेश्वरवाद करता था, वह आज नास्तिकतावादी विचार अंजाम दे रहे हैं। आज की दुनिया में ऐसे विचार प्रभावशाली हो गए हैं, जो ईश्वर के अस्तित्व को संदिग्ध घोषित करते हैं, जो ईश-ज्ञान और ईश-प्रेरणा को काल्पनिक बताते हैं, जो परलोक को बेबुनियाद साबित कर रहे हैं। इस तरह यह

---

* ईश्वर के अस्तित्व का इंकार करना।

विचार एकेश्वरवादी धर्म को अपनाने में रुकावट बने हुए हैं। आज का फ़ितना यह है कि ख़ुद सोचने के अंदाज़ को बुनियादी रूप से बदल दिया गया है। इसका नतीजा यह है कि आज का इंसान या तो नकारने वाला बन गया है या वह कम-से-कम संदेह में पड़ गया।

यह एक प्रकार का वैचारिक हमला (intellectual invasion) है। हमें इस हमले का मुक़ाबला करना है। अब हमें दोबारा 'उनसे लड़ो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे' पर काम करना है, लेकिन यह काम तलवार के द्वारा नहीं होगा, बल्कि वैचारिक शक्ति के द्वारा होगा। नास्तिकतावादी विचारों का जवाब हमें एकेश्वरवादी विचारों से देना है। आज ज़रूरत है कि उच्च ज्ञानात्मक तर्कवाद से आधुनिक नास्तिकतावादी विचारों को बेबुनियाद साबित कर दिया जाए। हमारी यह जंग उस समय तक जारी रहेगी, जब तक यह दृष्टिकोण अपना वर्चस्व खो न दे और एकेश्वरवाद का विचार समय का प्रभुत्वशाली विचार न बन जाए।

हार-जीत की यह घटना सबसे पहले वैचारिक मैदान में होगी। यह उसी प्रकार की एक घटना होगी, जैसा कि हम मौजूदा दौर में पश्चिमी विचारों के उदाहरण में देख रहे हैं। मौजूदा दौर में वैज्ञानिक विद्याओं ने परंपरागत विद्याओं पर वर्चस्व पाया है। राजशाही सिद्धांत पर लोकतांत्रिक सिद्धांत बेहतर साबित हुआ है। क्रिएशन पर एवोल्यूशन को श्रेष्ठता प्राप्त है। व्यक्तिगत रोज़गार की तुलना में सामूहिक रोज़गार का दृष्टिकोण हावी हो गया है । यह सब-की-सब वैचारिक प्रभुत्व की घटनाएँ हैं। इसी अवस्था का प्रभुत्व नास्तिकतावादी विचार पर एकेश्वरवादी विचार के लिए वांछित है। यही प्रभुत्व मुसलमानों की अगली सभी सफलताओं की शुरुआत है।

इस सिलसिले में एक और महत्वपूर्ण बात की ओर संकेत करना ज़रूरी है। वह यह कि मौजूदा दौर में नास्तिकतावादी विचारों का प्रभुत्व, उन विचारों की किसी योग्यता (merit) के कारण नहीं हुआ है, यह सारा-का-सारा केवल धोखे के द्वारा हासिल किया गया है। मौजूदा दौर में जो नई वैज्ञानिक खोजें हुई हैं , वह हक़ीक़त में ईश्वर की प्रकृति के भेदों का इज़हार थीं। अपनी हक़ीक़त की दृष्टि से वह एकेश्वरवादी धर्म के पक्ष में प्रकृति का प्रमाण थीं, लेकिन मुसलमान कई कारणों से आधुनिक वैज्ञानिक विद्याओं में पीछे रह गए। वे इस योग्य न हो सके कि इन विद्याओं को सही दिशा दे सकें और उनको धार्मिक समर्थन में प्रयोग

करें। नास्तिक विद्वानों ने इस ख़ालीपन से फ़ायदा उठाया। उन्होंने आधुनिक जानकारियों को ग़लत व्याख्या के द्वारा अपने पक्ष में इस्तेमाल किया। जिन घटनाओं से एकेश्वरवादी धर्म साबित हो रहा था, उनको नास्तिक धर्म का प्रमाण बना दिया। इसका एक स्पष्ट उदाहरण डार्विन का विकास का सिद्धांत है (Darwin's Theory of Evolution), जिसने मौजूदा दौर में नास्तिकतावादी विचार पैदा करने में सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ज़मीन की परतों के अध्ययन के दौरान इंसान के ज्ञान में यह बात आई कि पुराने ज़माने के जीव-जंतुओं के ढाँचे विशिष्ट रासायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप जीवाश्म (fossil) का रूप धारण कर गए हैं। ज़मीन की खुदाई से इस तरह के बहुत से जीवाश्म के नमूने जमा किए गए। इन पर कार्बन डेटिंग का तरीक़ा इस्तेमाल किया गया तो लगभग पुष्टि के साथ उनका इतिहास मालूम हो गया। यह जाँच-पड़ताल सौ वर्ष से भी अधिक लंबी अवधि तक जारी रही, यहाँ तक कि इंसान इस पोजीशन में आ गया कि विभिन्न जीव-प्रजातियों के बीच इतिहास की दृष्टि से क्रम स्थापित कर सके।

इस ऐतिहासिक क्रम से पता चला कि वह सारी विभिन्न जीव-प्रजातियाँ, जो आज ज़मीन पर स्पष्ट रूप से एक ही समय नज़र आ रही हैं, वह सब ज़मीन पर एक ही समय पर अस्तित्व में नहीं आईं; बल्कि ज़मीन पर उनके अस्तित्व में आने में एक ऐतिहासिक क्रम (historical order) है, वह यह कि साधारण प्रकार के जीव-जंतु सबसे पहले अस्तित्व में आए। उसके बाद क्रमवार अधिक जटिल जीव-प्रजातियाँ अस्तित्व में आती रहीं, यहाँ तक कि आख़िरकार इंसान अस्तित्व में आ गया। इस तरह एकल कोशिका प्राणी (single cellular animal) ज़मीन पर पहले अस्तित्व में आए और इंसान इस जीव विकास-क्रम के सबसे अंत में अस्तित्व में आया।

विकासवाद के सिद्धांत की इमारत जिन अवलोकनों पर स्थापित की गई है, उनमें सबसे महत्वपूर्ण अवलोकन यही है। विकास के सिद्धांत के समर्थकों का कहना है कि यह क्रम बताता है कि जीवन के विभिन्न प्रकार विकासीय क्रिया के द्वारा अस्तित्व में आए यानी जीवन का हर अगला आकार (form) अपने पिछले आकार से निकलता रहा। यह तरक़्क़ी पीढ़ी-दर-पीढ़ी होती रही, यहाँ तक कि इसके अंतिम समूह ने वह उच्च रूप अपना लिया, जिसे इंसान कहा जाता है, लेकिन यह सरासर ग़लत व्याख्या का नतीजा है, न कि किसी

वास्तविक तार्किकता का नतीजा। शुद्ध ज्ञानात्मक दृष्टिबिंदु से देखा जाए तो जो बात अवलोकन में आई है, वह केवल यह है कि ज़मीन पर विभिन्न जीव-प्रजाति की मौजूदगी में एक ऐतिहासिक क्रम (chronological order) पाया जाता है, न यह कि जीव-प्रजाति एक-दूसरे के गर्भ से नियमानुसार विकसित होते चले गए हैं।

मूल अवलोकन केवल उत्पत्ति के ऐतिहासिक क्रम को बता रहा था, लेकिन ग़लत व्याख्या के द्वारा उसे जीवन के क्रमिक विकास के अर्थ में ले लिया गया। विकास के अवलोकन, रचयिता (creator) का खंडन नहीं करते, जैसा कि ख़ुद चार्ल्स डार्विन ने अपनी किताब 'ओरिजिन ऑफ़ स्पीसीज़' में स्वीकार किया है, बल्कि अगर यह अवलोकन सही है तो वह रचयिता की रचनात्मक क्रिया के क्रम को बताते हैं।

यह छोटी-सी जाँच-पड़ताल यह बताने के लिए काफ़ी है कि मौजूदा दौर में इस्लाम के पुनर्जीवन (revival) की राह का पहला बुनियादी काम इस्लाम का वैचारिक प्रभुत्व है और यह कि वैचारिक प्रभुत्व स्पष्टतः मुश्किल होने के बाद भी बहुत आसान है। इस्लाम के पिछले इतिहास में इससे मिलते-जुलते उदाहरण इसके सबूत के लिए काफ़ी हैं।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के दौर में अरब के लोग इस्लाम के बहुत ही कट्टर दुश्मन के रूप में सामने आए, लेकिन केवल चौथाई शताब्दी के दावती संघर्ष ने बताया कि उस ताक़तवर दुश्मन के अंदर ताक़तवर मददगार का व्यक्तित्व छुपा हुआ था। इस तरह सातवीं शताब्दी हिजरी में तातारी क़बीले इस्लाम के ख़िलाफ़ अपराजेय ताक़त बनकर उभरे, लेकिन एक शताब्दी से भी कम समय में मालूम हुआ कि यह ताक़तवर तलवार केवल इसलिए प्रकट हुई थी कि आख़िरकार वह इस्लाम की ताक़तवर सेवक और रक्षक बन जाए।

यही मौजूदा दौर के 'इस्लाम की दुश्मन' विद्याओं का मामला है। देखा जाए तो इन विद्याओं ने आज इस्लाम को हराकर रखा है, लेकिन अगर हम अपने प्रयासों को सही दिशा में जारी कर सकें तो आधी शताब्दी भी नहीं गुज़रेगी कि यह सारा ज्ञान इस्लाम को स्वीकार कर लेगा। वह इस्लाम के तर्कशास्त्र (logic) का रूप धारण कर लेगा और फिर दुनिया देखेगी कि आधुनिक विद्याओं की ताक़त केवल इसलिए प्रकट हुई थी कि वह ईश्वरीय धर्म की ताक़तवर मददगार बन जाए।

इस्लाम के पक्ष में इस परिणाम को प्राप्त करने की केवल एक ही ज़रूरी शर्त है, वह यह कि हम दूसरे इलाक़ों में अपनी जो ताक़त बेकार कर रहे हैं, उसे समेटकर उसी एक मैदान, वैचारिक क्रांति लाने के मैदान में लगा दें। जिस दिन यह घटना होगी, उसी दिन इस्लाम का एक नया इतिहास बनना शुरू हो जाएगा और यह एक मालूम सच्चाई है कि सही शुरुआत ही हक़ीक़त में सही अंत का दूसरा नाम है।

नोट :- यह लेख अंग्रेज़ी भाषा में कुआलालंपुर के अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में जुलाई, 1984 में प्रस्तुत किया गया।

आधुनिक युग में क़ुरआन की दावत

मुसलमानों पर ईश्वर ने विभिन्न कर्तव्य लागू किए हैं। अपने आपको ईश्वर का इबादतगुज़ार बनाने से लेकर मुसलमानों के सुधार तक बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ हैं, जिनमें मुसलमान बँधे हुए हैं। उन्हीं में से एक ज़िम्मेदारी वह है, जिसे 'दावत इलल्लाह' या 'शांतिपूर्ण तरीक़े से ईश्वर की ओर निमंत्रण देना' कहा जाता है। इसका उद्देश्य ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों तक ईश्वर के सच्चे धर्म का संदेश पहुँचाना है। यह मुसलमानों की क़ौमी जद्दोजहद का नाम नहीं, बल्कि पैग़ंबर की विरासत है, जो पैग़ंबरी के समापन के बाद मुसलमानों के हिस्से में आई है।

मुसलमानों के लिए ईश्वर ने लोक-परलोक की सारी भलाइयाँ दावत इलल्लाह के काम से जोड़ दी हैं। एक ओर क़ुरआन के अनुसार दावत इलल्लाह में 'लोगों से बचाने' (5:67) का राज़ छुपा हुआ है। दूसरी ओर यही वह काम है, जिसकी अदायगी के नतीजे में ईमान वाले परलोक में बुलंद मक़ाम पर खड़े किए जाएँगे, जिसे क़ुरआन में 'असहाब-ए-आराफ़' (7:46) कहा गया है। यह परलोक का सबसे बड़ा सम्मान है, जो सत्य के निमंत्रणकर्ताओं को दिया जाएगा।

लेकिन दावत इलल्लाह का काम कोई साधारण या आसान काम नहीं है। यह पैग़ंबर और पैग़ंबर के साथियों के इतिहास को फिर से दोहराना है। यह ईश्वर के बंदों के सामने ईश्वर का प्रतिनिधि बनना है। यह दुनिया में ईश्वर की बड़ाई और महानता का राग छेड़ना है। यह छुपी हुई हक़ीक़त को लोगों के लिए खुली हुई हक़ीक़त बनाना है। जो कुछ इससे पहले पैग़ंबराना सतह पर होता रहा है, उसे ग़ैर-पैग़ंबराना सतह पर अंजाम देना है। दावत की असल स्थिति आदमी के सामने न हो तो वह दावत के नाम पर ऐसा काम करेगा, जिसका दावत से कोई संबंध न हो।

वैश्विक वातावरण का परिवर्तन

इस सिलसिले में पहली बात, जिसे जानना ज़रूरी है, वह यह कि वह कौन से हालात हैं, जिनके बीच हमें दावत के काम को अंजाम देना है। संक्षिप्त शब्दों में, उसका वर्णन इस तरह किया जा सकता है कि हमारे पूर्वजों के लिए दावत इलल्लाह का मतलब अनेकेश्वरवादी दौर (polytheistic era) को ख़त्म करना था। अब हमारे लिए दावत इलल्लाह का मतलब नास्तिकतावादी दौर (atheistic era) को ख़त्म करना है। हमारे पूर्वज अनेकेश्वरवादी दौर को ख़त्म करके एकेश्वरवादी दौर को ले आए। इसके बाद दुनिया में एक नया इतिहास अस्तित्व में आया। यह इतिहास हज़ार वर्ष तक सफलता के साथ चलता रहा, यहाँ तक कि सोलहवीं शताब्दी ई० में पश्चिमी विज्ञान अस्तित्व में आया। उसके बाद दुनिया का एक नया इतिहास बनना शुरू हुआ। बीसवीं शताब्दी में आकर यह इतिहास अपनी बुलंदी पर पहुँच गया। अब दोबारा यह हाल हो गया है कि इस्लाम के अस्तित्व में आने से पहले जिस तरह आचार-विचार के सभी विभागों पर अनेकेश्वरवाद का प्रभुत्व था, उसी तरह अब आचार-विचार के सभी विभागों पर नास्तिकता का प्रभुत्व हो चुका है; यहाँ तक कि आज धर्म भी ज्ञानात्मक रूप से नास्तिकता का परिशिष्ट (appendix) बन चुका है। इससे अलग उसकी कोई स्थायी हैसियत नहीं।

यहाँ एक हास्यपूर्ण बात वर्णन करने योग्य है, जो मौजूदा दौर में धर्म के रूप को बहुत अच्छी तरह स्पष्ट करती है। जर्मन विचारक ई० एफ़० शूमाकर ने अपनी एक घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है—

> "On a visit to Leningrad some year ago (August, 1968) I consulted a map to find out where I was, but I could not make it out. I could see several enormous churches, yet there was no trace of them on my map. When finally an interpreter came to help me, he said, "We don't show churches on our maps."
>
> E.F. Schumacher
>
> (*A guide for the Perplexd*, London, 1981, p. 9)
>
> "अगस्त, 1968 में मैं रूस के शहर लेनिनग्राड गया। वहाँ एक दिन मैं एक नक़्शा देख रहा था, ताकि मुझे पता चल सके कि मैं कहाँ हूँ, मगर मैं उसको न जान सका। मेरी नज़रों के सामने कई

बड़े-बड़े चर्च थे, मगर मेरे नक़्शे में उनका कोई निशान मौजूद न था। आख़िरकार एक अनुवादक (Translator) ने मेरी सहायता की। उसने कहा कि हम अपने नक़्शों में चर्च को नहीं दिखाते।”

यह आंशिक घटना उस पूरी परिस्थिति की तस्वीर है, जो मौजूदा दौर में सामने आई है। आधुनिक इंसान ने ईश्वर को अपने सभी ज्ञानात्मक और वैचारिक नक़्शों से निकाल दिया है। मौजूदा दौर में भूगोल, इतिहास, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, खगोल विज्ञान आदि सभी विद्याएँ बहुत विस्तार के साथ संकलित की गई हैं, लेकिन इन विद्याओं में कहीं भी ईश्वर का वर्णन नहीं। एक आदमी, जिसे नज़र हासिल हो, जब वह आँख उठाकर कायनात को देखता है तो हर ओर उसे ईश्वर की निशानियाँ साफ़ नज़र आतीं है, लेकिन संग्रहीत विद्याओं में ईश्वर हर जगह मौजूद चीज़ नहीं है। इन विद्याओं को पढ़ने वाला कहीं भी ईश्वर का कोई हवाला नहीं पाता।

इन हालात में एकेश्वरवाद के निमंत्रण का काम मानो ईश्वर को पुन: इंसानी सोच के नक़्शे पर लिखना है। विश्व स्तर पर एक ऐसी वैचारिक क्रांति लाना है कि इंसान दोबारा ईश्वरीय परिभाषाओं में सोचने के योग्य हो सके। इसके बाद ही यह संभव है कि एकेश्वरवाद और परलोक की बात आदमी की समझ में आए और इसे वह हक़ीक़त समझकर स्वीकार कर सके। हमारे पूर्वजों ने इंसानी सोच की दुनिया में अनेकेश्वरवाद की मानसिकता को तोड़कर एकेश्वरवाद की मानसिकता को स्थापित किया था। अब हमें दोबारा नास्तिकता की मानसिकता को एकेश्वरवाद की मानसिकता पर इंसानी सोच की व्यवस्था को स्थापित करना है। निमंत्रण के मामले की इससे कम कल्पना निमंत्रण के मामले को छोटा समझना (underestimation) है, जिसकी कोई क़ीमत न तो बंदों के नज़दीक है और न ही ईश्वर के नज़दीक।

निमंत्रणकर्ता और निमंत्रित का संबंध

दूसरी महत्वपूर्ण बात मुसलमानों और ग़ैर-मुसलमानों के बीच निमंत्रणकर्ता और निमंत्रित का संबंध स्थापित करना है। मुस्लिम समुदाय की हैसियत से मुसलमान ईश्वरीय धर्म के निमंत्रणकर्ता हैं और बाक़ी सभी लोग उनके लिए निमंत्रित की हैसियत रखते हैं, लेकिन मौजूदा दौर में मुसलमानों ने सबसे बड़ी ग़लती यह की है कि उन्होंने दूसरी क़ौमों को अपना क़ौमी

प्रतिद्वंद्वी और भौतिक शत्रु बना लिया है। इन क़ौमों के साथ उन्होंने सारी दुनिया में आर्थिक व राजनीतिक झगड़े छेड़े हुए हैं। क़ुरआन में निमंत्रणकर्ता का कलमा 'ला असअलूकुम अलैहि मिन अज्र' (मैं तुमसे इस पर कोई बदला नहीं चाहता) बताया गया है। ऐसी हालत में अधिकारों की माँग के यह सारे हंगामे अपनी निमंत्रणीय हैसियत को नकारने के समान अर्थ रखते हैं।

अगर हम यह चाहते हैं कि ईश्वर के यहाँ हमें ईश्वर के गवाह का दर्जा हासिल हो तो हमें यह क़ुर्बानी देनी होगी कि दूसरी क़ौमों से हमारे सांसारिक झगड़े, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से सही क्यों न हों, उनको हम एकतरफ़ा तौर पर ख़त्म कर दें, ताकि हमारे और दूसरी क़ौमों के बीच निमंत्रणकर्ता और निमंत्रित का संबंध स्थापित हो। हमारे और दूसरी क़ौमों के बीच वह संतुलित वातावरण अस्तित्व में आए, जिसमें उनके सामने एकेश्वरवाद और परलोक का निमंत्रण प्रस्तुत किया जाए और वे गंभीरता के साथ उस पर चिंतन कर सकें।

हुदैबिया संधि (6 हिजरी) में मुसलमानों ने एकतरफ़ा तौर पर इस्लाम के विरोधियों की सभी आर्थिक और क़ौमी माँगों को मान लिया था। उन्होंने अपने अधिकारों को छोड़ने के लिए ख़ुद अपने हाथ से हस्ताक्षर कर दिए थे, लेकिन मुसलमान जब यह समझौता करके लौटे तो ईश्वर की ओर से यह आयत उतरी— "बेशक हमने तुम्हें खुली जीत दे दी" (क़ुरआन, 48:1)। प्रत्यक्ष रूप में पराजय के समझौते को ईश्वर ने जीत का समझौता क्यों कहा। इसका कारण यह था कि इस समझौते ने मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के बीच मुक़ाबले के मैदान को बदल दिया था। अब इस्लाम और ग़ैर-इस्लाम का मुक़ाबला एक ऐसे मैदान में स्थानांतरित हो गया था, जहाँ इस्लाम स्पष्ट रूप से बेहतर स्थिति (advantegeous position) में था।

ग़ैर-मुस्लिमों की आक्रामकता की वजह से उस समय इस्लाम और ग़ैर-इस्लाम का मुक़ाबला युद्ध के मैदान में हो रहा था। ग़ैर-मुस्लिम के पास हर तरह के ज़्यादा बेहतर लड़ाकू संसाधन थे। यही कारण है कि हिजरत के बाद लगातार लड़ाइयों के बावजूद मामले का फ़ैसला नहीं हो रहा था। अब हुदैबिया में ग़ैर-मुस्लिमों की सभी क़ौमी माँगों को मानकर उनसे यह वचन ले लिया गया कि दोनों पक्षों के बीच दस वर्षों तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (direct or indirect) युद्ध नहीं होगा।

लगातार युद्ध की स्थिति बने रहने के कारण इस्लाम का लोगों को

निमंत्रित करने का काम रुका हुआ था। युद्ध के बंद होते ही निमंत्रण का काम पूरी ताक़त के साथ होने लगा। लड़ाई के मैदान में उस समय इस्लाम कमज़ोर था, लेकिन जब मुक़ाबला शांतिपूर्ण प्रचार के मैदान में आ गया तो यहाँ अनेकेश्वरवाद के पास कुछ न था, जिससे वे एकेश्वरवाद की सत्यता का मुक़ाबला कर सकें। नतीजा यह हुआ कि अरब के क़बीले इतनी बड़ी संख्या में इस्लाम में दाख़िल हुए कि कुफ़्र का ज़ोर टूट गया और समझौते के केवल दो वर्ष के अंदर मक्का शहर शांतिपूर्वक जीत लिया गया।

मौजूदा दौर में भी उसी तरह के एक 'हुदैबिया समझौते' की ज़रूरत है। मुसलमान दूसरी क़ौमों से हर जगह आर्थिक लड़ाई लड़ रहे हैं। चूँकि मुसलमान अपनी लापरवाही के कारण आर्थिक पहलू से दूसरी क़ौमों की तुलना में बहुत पीछे हो गए हैं। उन्हें हर मोर्चे पर उनसे हार का सामना करना पड़ रहा है। अब ज़रूरत है कि एकतरफ़ा क़ुर्बानी के द्वारा इन मोर्चों को बंद करके मुक़ाबले के मैदान को बदल दिया जाए। इन क़ौमों को आर्थिक प्रतिस्पर्धा (economic competition) के मैदान से हटाकर वैचारिक प्रतिस्पर्धा (ideological competition) के मैदान में लाया जाए। पुराने ज़माने में मुक़ाबले के मैदान का यह परिवर्तन युद्ध को एकतरफ़ा तौर पर ख़त्म करके हासिल किया गया था। आज यह परिवर्तन क़ौमी अधिकारों के अभियान को एकतरफ़ा तौर पर ख़त्म करके हासिल होगा।

राष्ट्रीय हितों की यह क़ुर्बानी एक बहुत ही मुश्किल काम है, मगर इसी खोने में पाने का सारा राज़ छुपा हुआ है। मुसलमान जिस दिन ऐसा करेंगे, उसी दिन इस्लाम की जीत का आग़ाज़ हो जाएगा, क्योंकि वैचारिक क्षेत्र में किसी और के पास कोई चीज़ मौजूद ही नहीं। आर्थिक प्रतिस्पर्धा के मैदान में मुसलमानों के पास 'परंपरागत हथियार' हैं और दूसरी क़ौमों के पास 'आधुनिक हथियार'। जबकि वैचारिक मैदान में मुसलमानों के पास हक़ीक़त है और दूसरी क़ौमों के पास पक्षपात, और हक़ीक़त के मुक़ाबले में पक्षपात ज़्यादा देर तक नहीं ठहर सकता।

साहित्य की तैयारी

क़ुरआन में यह वर्णन है कि ईश्वर ने क़लम के द्वारा इंसान को शिक्षा दी (96:5)। इससे इस्लामी दावत के लिए साहित्य की अहमियत मालूम होती

है, मगर इस्लामी साहित्य का यह मतलब नहीं कि इस्लाम के नाम पर कुछ किताबें लिखी जाएँ और उन्हें किसी-न-किसी तरह अलग-अलग भाषाओं में छापकर बाँटा जाए। हक़ीक़त यह है कि इस्लामी साहित्य का मामला कोई साधारण मामला नहीं, बल्कि यह इंसानी सतह पर क़ुरआन का बदल उपलब्ध कराना है।

ईश्वर ने अपनी वाणी अरबी भाषा में उतारी है, मगर इसका प्रचार दूसरी भाषाओं वालों तक भी करना है और जैसा कि साबित है कि निमंत्रित की उसकी अपनी भाषा में करना है (14:4)। इस दृष्टि से अगर 'अल्लमा बिल क़लम' (ईश्वर ने क़लम के द्वारा इंसान को शिक्षा दी) को वक़्ती न समझा जाए, बल्कि इसे स्थायी पृष्ठभूमि (everlasting perspective) में रखकर देखा जाए तो निश्चित रूप से इंसान भी इसमें शामिल हो जाता है, क्योंकि दूसरी भाषाओं में क़लम के द्वारा शिक्षा का कर्तव्य इंसान को ही अदा करना है। मानो यह कहना सही होगा कि ईश्वर अरबी भाषा में क़लम के द्वारा शिक्षक बना था, अब हमें दूसरी भाषाओं में क़लम के द्वारा शिक्षक बनना है। मशहूर अरब शायर लबीद ने क़ुरआन को सुनकर शायरी छोड़ दी। किसी ने कहा कि अब तुम शायरी क्यों नहीं करते? उन्होंने कहा, "क्या क़ुरआन के बाद भी?" इसका मतलब यह है कि क़ुरआन ने अपने ज़माने के लोगों को मानसिक रूप से जीत लिया था। इसी तरह आज दोबारा ऐसे साहित्य की ज़रूरत है, जो लोगों को मानसिक रूप से जीत ले।

प्रत्यक्ष रूप से यह बात असंभव दिखाई देती है, लेकिन इस असंभव को ख़ुद ईश्वर ने हमारे लिए संभव बना दिया है। ईश्वर ने सत्य के निमंत्रणकर्ताओं की मदद के लिए मानव इतिहास में एक नई क्रांति की। यहाँ मेरा मतलब वैज्ञानिक क्रांति से है। वैज्ञानिक क्रांति के द्वारा नई तार्किक संभावनाएँ इंसान की पहुँच में आ गईं, यहाँ तक कि निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि आज हमारे लिए यह संभव हो गया है कि संबोधित के सामने धर्म के पक्ष में उन चमत्कारिक तर्कों को प्रस्तुत कर सकें, जो पहले केवल ईश्वर के पैग़ंबरों की पहुँच में होते थे।

हक़ीक़त यह है कि कायनात एक शानदार ईश्वरीय चमत्कार है। वह अपने पूरे अस्तित्व के साथ अपने रचयिता की हस्ती और गुणों के पक्ष में चमत्कारिक प्रमाण है, लेकिन पुराने ज़माने में यह ईश्वरीय चमत्कार अभी

तक अपर्याप्त स्थिति में पड़ा हुआ था, इसलिए ईश्वर ने पुराने ज़माने में पैग़ंबरों को विशिष्ट रूप से असाधारण गुणों के चमत्कार दिए, मगर पैग़ंबर-ए-इस्लाम के संबोधितों की लगातार माँग के बावजूद उन्हें इस तरह का कोई चमत्कार नहीं दिखाया गया, बल्कि क़ुरआन में कायनात का हवाला दिया गया। कहा गया है कि कायनात में ईश्वर की निशानियाँ मौजूद हैं, उनको देखो। वही तुम्हारे विश्वास के लिए काफ़ी हैं। चूँकि क़ुरआन वैज्ञानिक दौर के शुरू में आया, इसलिए क़ुरआन में कायनात की निशानियों का हवाला देना काफ़ी समझा गया। आने वाले ज़माने में क़ुरआन का संबोधित वह इंसान था, जो विज्ञान के दौर में जिएगा और विज्ञान के दौर के इंसान को ईश्वर और उसकी बातों पर विश्वास करने के लिए किसी चमत्कार की ज़रूरत नहीं।

चमत्कार से क्या वांछित है? चमत्कार का उद्देश्य केवल कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं, बल्कि सत्य को, निमंत्रण के संबोधित के लिए, आख़िरी हद तक साबित करना है। निमंत्रण के हक़ में ऐसे तर्कों को जमा करना है, जिसके बाद संबोधित के लिए इनकार की गुंजाइश न बचे। पुराने ज़माने में इसी उद्देश्य के लिए असाधारण गुण का चमत्कार दिखाया जाता था। मौजूदा ज़माने में यही काम प्रकृति के भेदों को खोलकर विज्ञान ने अंजाम दे दिया है। स्पष्ट है कि क़ुरआन में पैग़ंबराना चमत्कारों और कायनाती निशानियों के लिए एक ही शब्द इस्तेमाल हुआ है और वह शब्द आयत (निशानी) है।

ईश्वर के धर्म का निमंत्रण इस हद तक दिया जाए कि कोई तर्क शेष न रहे (4:165)। इसी तर्क-पूर्ति के लिए पुराने ज़माने में पैग़ंबरों के द्वारा चमत्कार दिखाए गए। अब सवाल यह है कि आज की क़ौमों के लिए भी यह वांछित है कि ईश्वरीय धर्म का निमंत्रण उनके सामने इस हद तक दिया जाए की कोई तर्क शेष ना रहे । फिर मौजूदा ज़माने में इसका ज़रिया क्या है, जबकि पैग़ंबरों का आना अब समाप्त हो चुका है।

आधुनिक वैज्ञानिक क्रांति इसी सवाल का जवाब है। आधुनिक वैज्ञानिक क्रांति के द्वारा यह संभव हो गया है कि सत्य धर्म की शिक्षाओं को ठीक उस कसौटी पर साबित किया जा सके, जो इंसान की अपनी मानी हुई कसौटी है। इस सिलसिले में पहली महत्वपूर्ण बात वह है, जो तर्क-प्रणाली (methodology) से संबंध रखती है। आधुनिक विज्ञान ने विभिन्न क्षेत्रों में

अपनी जाँच-पड़ताल के परिणामस्वरूप इस बात को पूरी तरह स्वीकार किया है कि निष्कर्षात्मक तर्क (inferential argument) अपनी दशा की दृष्टि से उतना ही मान्य (valid) है, जितना कि सीधा तर्क। यही क़ुरआन की तर्क-शैली है। इसका मतलब यह है कि मौजूदा ज़माने में इंसानी ज्ञान ने क़ुरआन की तर्क-शैली को ठीक वही दर्जा दे दिया है, जो धार्मिक विद्याओं के बाहर ख़ुद इंसान ने जिस तर्क-शैली को स्वीकार किया है।

आधुनिक विज्ञान का यह नतीजा हुआ कि जो चीज़ पहले केवल बाहरी सूचना की हैसियत रखती थी, वह अब ख़ुद इंसानी खोज बन चुकी है। आधुनिक विज्ञान ने मालूम किया है कि इंसान अपनी सीमितताओं (limitations) के कारण पूरी हक़ीक़त तक नहीं पहुँच सकता। इससे साफ़ तौर पर साबित होता है कि इंसान के मार्गदर्शन के लिए ईश-संदेश की ज़रूरत है। आधुनिक विज्ञान ने मालूम किया है कि कायनात में स्वच्छंद व्यवस्था (arbitrary system) है। इससे स्पष्ट रूप से ईश्वर का अस्तित्व साबित होता है। आधुनिक विज्ञान ने मालूम किया है कि मौजूदा दुनिया के साथ एक और अदृश्य समानांतर दुनिया मौजूद है, जिसका वैज्ञानिक नाम एंटी वर्ल्ड (anti world) है। इससे स्पष्ट रूप से परलोक की दुनिया का अस्तित्व साबित होता है आदि।

इसी प्रकार चुंबकीय क्षेत्र (magnetic field) और गति (motion) के मिलने से बिजली का पैदा होना वैसा ही एक आश्चर्यजनक ईश्वरीय चमत्कार है, जैसा हाथ को बग़ल में रखकर निकालने से हाथ का असाधारण रूप से चमक उठना और बड़े-बड़े जहाज़ों का अथाह समंदरों और लाँघे न जा सकने वाले माहौल में इंसान को लेकर दौड़ना, वैसा ही डरावना ईश्वरीय चमत्कार है, जैसा दरिया का फटकर इंसानों को पार होने का रास्ता देना। पदार्थ से गतिमान मशीनों का अस्तित्व में आना वैसा ही अजीब ईश्वरीय चमत्कार है, जैसा लाठी का साँप बनकर चलने लगना।

सच्चाई यह है कि पुराने ज़माने में पैग़ंबरों को जो चमत्कार दिए गए, वह सब तर्क-पूर्ति की दृष्टि से ईश्वर की पैदा की हुई कायनात में बड़े पैमाने पर मौजूद हैं, मगर पुराने ज़माने में चूँकि वह इंसान की जानकारी में नहीं आए थे, इसलिए ईश्वर ने लोगों को असाधारण चमत्कार दिखाए। आज वैज्ञानिक खोजों ने प्रकृति की यह निशानियाँ खोल दी हैं, इसलिए आज के इंसान के

विश्वास के लिए वही काफ़ी हैं।

हक़ीक़त यह है कि वैज्ञानिक क्रांति ईश्वर के चमत्कार का प्रदर्शन है। इसके द्वारा ईश्वर की सारी बातें चमत्कारिक स्तर पर साबित हो रही हैं। अगर इनसे गहरी जानकारी हासिल की जाए और इनको सत्य के समर्थन में इस्तेमाल किया जाए तो यह निमंत्रण के साथ चमत्कार को जोड़ना होगा। इसमें कोई शक नहीं कि अगर आज हम वास्तविक अर्थों में वैज्ञानिक तर्कों के साथ धर्म का निमंत्रण दे सकें तो ज़मीन पर दोबारा यह घटना अस्तित्व में आएगी कि वक़्त का लबीद कह दे— "क्या हक़ीक़त के इस तरह साबित हो जाने के बाद भी?"

विज्ञान के तर्क मौजूदा दौर में चमत्कारिक तर्क के बदल के समान हैं। आधुनिक विज्ञान ने सभी धार्मिक शिक्षाओं को ज्ञानात्मक रूप से प्रमाणित या कम-से-कम समझ में आने योग्य (understandable) बना दिया है, लेकिन इस्लाम के निमंत्रणकर्ताओं ने अभी तक इसे सही मायनों में इस्तेमाल नहीं किया है। लेखक ने इस विषय पर दस वर्षीय अध्ययन के बाद 1964 में एक किताब उर्दू भाषा में 'मज़हब और जदीद चैलेंज' लिखी थी, जो अरबी भाषा में 'अल-इस्लामु यतहद्दा' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है, लेकिन बीते वर्षों में ज्ञान का सागर बहुत आगे जा चुका है, अत: लेखक ने इस विषय पर अंग्रेज़ी भाषा में एक पुस्तक तैयार की है, जिसका नाम 'गॉड अराइसिस' (God Arises)है।

अनुकूल संभावनाएँ

धर्म के निमंत्रण का काम बहुत ही मुश्किल काम है, मगर ईश्वर ने अपनी विशिष्ट कृपा से इसे हमारे लिए आसान बना दिया है। इस मक़सद के लिए ईश्वर ने मानव इतिहास में ऐसे परिवर्तन किए, जिससे हमारे लिए नए अवसर खुल गए। मौजूदा दौर में यह ऐतिहासिक काम अपनी अंतिम सीमा को पहुँच गया है, यहाँ तक कि अब यह संभव हो गया है कि जो काम पहले 'ख़ून' के द्वारा करना पड़ता था, उसे अब क़लम की स्याही के द्वारा अंजाम दिया जा सके।

इस काम को आसान करने के तीन ख़ास पहलू हैं, जिनकी ओर क़ुरआन में इशारे किए गए हैं—

(1) क़ुरआन में ईमान वालों को यह दुआ बताई गई— "हे ईश्वर ! हम पर

वह बोझ न डाल, जो तूने पिछली क़ौमों पर डाला था।"

अगर शब्द बदलकर इस आयत की व्याख्या की जाए तो यह कहा जा सकता है कि इसका मतलब यह है कि एकेश्वरवाद के निमंत्रण का जो काम पिछले निमंत्रणकर्ताओं को, विचारों के प्रतिबंध के वातावरण में करना पड़ता था, उसे हमें विचारों की स्वतंत्रता के वातावरण में करने का अवसर प्रदान करे। पिछले ज़माने में यह हालत थी कि एकेश्वरवाद की घोषणा करने वाले को पत्थर मारे जाते। उसे आग में डाल दिया जाता। उसके शरीर को चीर दिया जाता। इसका कारण यह था कि पिछले ज़माने में हुकूमत की बुनियाद अनेकेश्वरवाद पर क़ायम थी। पिछले ज़माने के राजा काल्पनिक देवताओं के प्रतिनिधि बनकर शासन करते थे, इसलिए जब कोई आदमी अनेकेश्वरवाद को बेबुनियाद क़रार देता तो उस ज़माने के राजाओं को महसूस होता कि उस दृष्टिकोण का आधार समाप्त हो रहा है, जिस पर उन्होंने अपने शासन को स्थापित किया हुआ है।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम के द्वारा जो क्रांति आई, उसने अनेकेश्वरवाद की सामूहिक हैसियत को ख़त्म करके उसे एक व्यक्तिगत आस्था बना दिया। अब अनेकेश्वरवाद अलग हो गया और राजनीतिक संस्था अलग। इस तरह वह दौर ख़त्म हो गया, जबकि अनेकेश्वरवाद लोगों के लिए एकेश्वरवाद की घोषणा की राह में रुकावट बन सके। यही वह बात है, जिसका क़ुरआन में इन शब्दों में वर्णन है— "और उनसे लड़ो, यहाँ तक कि फ़ितना ख़त्म हो जाए और दीन सारा-का-सारा ईश्वर के लिए हो जाए।"

इस सिलसिले में दूसरी बात यह है कि इस्लाम ने जब अंधविश्वास और दिव्य व्यक्तित्व की विचारधारा का अंत किया तो वंशीय राजशाही की बुनियाद भी हिल गई। इसलिए मानव इतिहास में एक नया दौर शुरू हुआ, जो आख़िरकार यूरोप पहुँचकर लोकतंत्र (democracy) के रूप में पूरा हुआ। इसके बाद व्यक्तिगत शासन के स्थान पर प्रजातांत्रिक शासन का नियम दुनिया में प्रचलित हुआ और वैचारिक स्वतंत्रता (ideological freedom) को हर आदमी का पवित्र अधिकार स्वीकार कर लिया गया। इस वैश्विक वैचारिक क्रांति ने सत्य के निमंत्रणकर्ताओं के लिए यह बड़ी संभावना खोल दी कि वे अनावश्यक बाधाओं से निडर होकर पूरी दुनिया में सत्य के ऐलान के काम को अंजाम दे सकें।

(2) क़ुरआन में यह घोषणा की गई है— "हम बहुत जल्द ही क्षितिज (horizon) में और इंसानों के अंदर ऐसी निशानियाँ दिखाएँगे, जिससे खुल जाए

कि यह सत्य है।" (41:53)

क़ुरआन की इस आयत में उस क्रांति की ओर इशारा है, जिसे आधुनिक वैज्ञानिक क्रांति कहा जाता है।

कायनात अपने पूरे अस्तित्व के साथ ईश्वर का प्रमाण है। सारी रचनाएँ अपने रचयिता के गुणों को प्रदर्शित कर रही हैं, जैसे कायनात क़ुरआन का प्रमाण है। फिर भी यह प्रमाण वैज्ञानिक क्रांति से पहले बड़ी हद तक अनदेखी हालत में पड़ा हुआ था। इस खोज के लिए ज़रूरी था कि चीज़ों की गहराई के साथ जाँच-पड़ताल की जाए, लेकिन, अनेकेश्वरवाद की आस्था इस जाँच-पड़ताल की राह में रुकावट थी। अनेकेश्वरवादी इंसान कायनात के प्रदर्शन को पूजने की चीज़ समझे हुए था, फिर वह इसे जाँच-पड़ताल की चीज़ कैसे बनाता।

एकेश्वरवाद की सार्वजनिक क्रांति ने इस रुकावट को ख़त्म कर दिया। इस्लामी क्रांति के बाद कायनात की पावनता का विचार ख़त्म हो गया। अब कायनात के प्राकृतिक प्रदर्शन पर स्वतंत्रतापूर्वक चिंतन-मनन शुरू हो गया। यह काम शताब्दियों तक विश्व स्तर पर जारी रहा, यहाँ तक कि आख़िरकर वह यूरोप पहुँच गया। यूरोप में उसे अनुकूल धरातल मिला। यहाँ उसने तेज़ी से तरक़्क़ी की, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ वह महान क्रांति हुई, जिसे मौजूदा दौर में 'वैज्ञानिक क्रांति' कहा जाता है।

वैज्ञानिक खोजों के द्वारा कायनात की जो हक़ीक़त मालूम हुई है, वह क़ुरआन के निमंत्रण को निश्चितता के स्तर पर साबित कर रही है। लेखक ने अपनी किताब 'मज़हब और जदीद चैलेंज' में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। जो लोग ज़्यादा जानकारी के इच्छुक हों, वे इस किताब का अध्ययन करें।

(3) इस सिलसिले में तीसरी चीज़ वह है, जिसकी ओर क़ुरआन की इस आयत में इशारा किया गया है—

"क़रीब है, ईश्वर तुम्हें एक मक़ाम-ए-महमूद पर खड़ा करे।"(17:79)

महमूद का मतलब है 'प्रशंसा किया हुआ'। प्रशंसा दरअसल मानने और स्वीकार करने का अंतिम रूप है। किसी को मानने वाला जब उसे मानने की अंतिम सीमा पर पहुँचता है तो वह उसकी प्रशंसा करने लगता है। इस दृष्टि से इसका मतलब यह होगा कि ईश्वर की योजना यह थी कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम को स्वीकार्य पैग़ंबरी के स्थान पर खड़ा करे। पैग़ंबर-ए-इस्लाम दुनिया में भी प्रशंसित

थे और परलोक में भी प्रशंसित। 'शफ़ाअते-कुब्रा'*, जिसका वर्णन हदीस में है, वह परलोक में आपका मक़ाम-ए-महमूद है और आपका ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित व स्वीकार्य होना दुनिया में आपका मक़ाम-ए-महमूद है।

ईश्वर की ओर से हर दौर में और हर क़ौम में पैग़ंबर आए। यह सब सच्चे पैग़ंबर थे। इन सबका संदेश भी एक था, लेकिन विभिन्न कारणों से इन पैग़ंबरों को ऐतिहासिक हैसियत प्राप्त न हो सकी। ऐतिहासिक रिकॉर्ड के अनुसार आज के इंसान के लिए उन पैग़ंबरों की हैसियत विवादित पैग़ंबरीकी है, न कि मान्य पैग़ंबरी की। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की पैग़ंबरी ऐतिहासिक रूप से एक प्रमाणित पैग़ंबरी है, जबकि दूसरे पैग़ंबरों की पैग़ंबरी ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित नहीं। इस आधार पर आज यह सभंव हो गया है कि हम प्रमाणित (established) पैग़ंबरी की सतह पर दीन का निमंत्रण दे सकें, जबकि इससे पहले हमेशा विवादग्रस्त पैग़ंबरी की सतह पर दीन का निमंत्रण देना पड़ता था।

डॉक्टर निशिकांत चट्टोपाध्याय भारत के एक उच्च शिक्षित हिंदू थे। वह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हैदराबाद में पैदा हुए। डॉक्टर चट्टोपाध्याय को सच की तलाश हुई। इस उद्देश्य से उन्होंने हिंदी, अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाएँ सीखीं। उन्होंने सभी धर्मों का अध्ययन किया, लेकिन वे किसी से संतुष्ट न हो सके। इसका एक बड़ा कारण यह था कि उन्होंने पाया कि यह समस्त धर्म ऐतिहासिक मापदंड पर साबित नहीं होते, फिर किस तरह उनकी वास्तविकता पर विश्वास किया जाए और उनको प्रामाणिक समझा जाए।

अंत में उन्होंने इस्लाम धर्म का अध्ययन किया। वे यह देखकर हैरान रह गए कि इस्लाम की शिक्षाएँ आज भी अपने मूल रूप में पूरी तरह सुरक्षित हैं। इस्लाम के आदर्श चरित्र पूरी तरह से ऐतिहासिक हैं, न कि मिथक (काल्पनिक) व्यक्तित्व। वे लिखते हैं— "मैंने पाया कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी में कोई चीज़ अस्पष्ट व धुँधली नहीं और न ही रहस्यमय या मिथक (mythological) है, जैसा कि उदाहरण के रूप में— ज़रथुश्त्र और श्रीकृष्ण के यहाँ, यहाँ तक कि बुद्ध और ईसा मसीह के यहाँ है। दूसरे पैग़ंबरों के अस्तित्व तक के बारे में विद्वानों ने शक किया है, यहाँ तक कि इनकार किया है, लेकिन जहाँ तक मैं जानता हूँ कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम के बारे में कोई यह साहस न कर सका कि उन्हें अंधविश्वासी आस्था

* किसी के पक्ष में अनुग्रह करना।

या परियों की कहानी कह सके।"

इसके बाद डॉक्टर निशिकांत चट्टोपाध्याय कहते हैं—

"Oh, what a relief to find, after all, a truly historical Prophet to beleive in."

Why have I accepted Islam, Dr Nishikant Chattopadhyay.

"आह ! कितनी राहत मिली! आख़िरकार एक ऐसा पैग़ंबर पाकर जो सही मायनों में ऐतिहासिक है जिस पर इंसान यक़ीन कर सके"

यही वह चीज़ है, जिसे क़ुरआन में मक़ाम-ए-महमूद कहा गया है (17:79)। ऐतिहासिक पैग़ंबरी का ही दूसरा नाम नबूवत-ए-महमूदी है। आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद को मक़ाम-ए-महमूद पर खड़ा करने का मतलब यह है कि आप दूसरे पैग़ंबरों की तरह ऐतिहासिक रूप से अज्ञात व्यक्तित्व या अप्रामाणिक व्यक्तित्व नहीं होंगे, बल्कि आप सारे इंसानों के लिए पूरी तरह से एक ज्ञात और स्वीकृत व्यक्तित्व होंगे। आपका जीवन-चरित्र भी एक सुरक्षित जीवन-चरित्र होगा और आपकी शिक्षा भी एक सुरक्षित शिक्षा।

यह इस्लाम के निमंत्रणकर्ताओं के लिए मौजूदा दौर में बहुत बड़ा फ़ायदा है। इसका मतलब यह है कि निमंत्रण के क्षेत्र में वे बिना मुक़ाबले के सफलता प्राप्त करने की स्थिति में हैं।

इंसान पैदाइशी तौर पर अपने स्वभाव में ईश्वर की चाह, लेकर पैदा होता है। इसलिए उसे सच्चाई की तलाश होती है। वह मानवीय विद्याओं में अपनी माँग का जवाब खोजना चाहता है, लेकिन वह खोज नहीं पाता। फिर वह धर्मों का अध्ययन करता है तो पाता है कि मौजूदा सभी धर्म ऐतिहासिक रूप से असुरक्षित हैं। उन्हें ऐतिहासिक विश्वसनीयता (historical credibility) का दर्जा प्राप्त नहीं। यहाँ हम इस स्थिति में हैं कि इंसान से कह सकें कि तुम जिस चीज़ की तलाश में हो, वह सुरक्षित और प्रामाणिक स्थिति में हमारे पास मौजूद है। दूसरों के पास केवल ग़ैर-ऐतिहासिक पैग़ंबर हैं, जिन्हें वे दुनिया के सामने प्रस्तुत करें, मगर इस्लाम का पैग़ंबर पूरी तरह एक ऐतिहासिक पैग़ंबर है। इतिहास की प्रामाणिक कसौटी के अनुसार आपके बारे में किसी तरह का शक करने की गुंजाइश नहीं। दूसरों के पास विवादग्रस्त पैग़ंबरी है और इस्लाम के पास प्रामाणिक पैग़ंबरी। यह ईश्वर की बहुत बड़ी कृपा है। उसने संभव बना दिया है कि ईश्वर के दीन का निमंत्रण आज प्रामाणिक पैग़ंबरी की

सतह पर दिया जाए, जबकि इससे पहले वह केवल विवादित पैग़ंबरी की सतह दिया जा सकता था।

विरोधी कार्य को समाप्त करना

मौजूदा दौर में इस्लामी दावत का काम हक़ीक़त में आधुनिक समुदायों पर तर्क-पूर्ति के अर्थ जैसा है। यह एक शानदार काम है, जिसके लिए शानदार संसाधन और असाधारण अनुकूल परिस्थितियों की ज़रूरत है। यह संसाधन और हालात मुस्लिम देशों में निश्चित रूप से मिल सकते हैं, लेकिन वह उसी समय मिल सकते हैं, जबकि मुस्लिम शासन को इस्लामी दावत का प्रतिद्वंद्वी न बनाया जाए।

सन 1891 ई० की घटना है कि जापान के राजा मेजी (1868-1912) का एक पत्र तुर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय को मिला। इस पत्र में सुल्तान से निवेदन किया गया था कि वह मुस्लिम प्रचारकों को जापान भेजे, ताकि वे वहाँ के लोगों को इस्लाम से परिचित कराएँ। सुल्तान अब्दुल हमीद ने इस महत्वपूर्ण काम के लिए सैयद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी का चयन किया और उन्हें हर तरह के सरकारी सहयोग का विश्वास दिलाया, लेकिन यही जमालुद्दीन अफ़ग़ानी, जिन्हें सुल्तान अब्दुल हमीद ने सम्मान और सहयोग का पात्र समझा था, बाद में इसी सुल्तान ने सैयद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी को जेल में बंद कर दिया, यहाँ तक कि जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई। इसका कारण यह था कि सुल्तान को मालूम हुआ कि सैयद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी उसके ख़िलाफ़ राजनीतिक षड्यंत्र में व्यस्त हैं। जमालुद्दीन अफ़ग़ानी सुल्तान को पश्चिमी उपनिवेश का एजेंट समझते थे और उसे तख़्त से बेदख़ल कर देना चाहते थे। जो आदमी जापान में इस्लाम के इतिहास का आग़ाज़ करने वाला बन सकता था, वह केवल जेल के रजिस्टर में अपने नाम की वृद्धि करके रह गया।

यही सभी मुस्लिम शासकों का हाल है। अगर आप इस्लामी दावत के काम में लगे हों तो वे हर तरह का ज़्यादा-से-ज़्यादा सहयोग आपको देंगे, लेकिन अगर आप उनके ख़िलाफ़ राजनीतिक अभियान चलाएँ तो वे आपको सहन करने लिए तैयार नहीं होते।

बदक़िस्मती से मौजूदा दौर में लगातार जमालुद्दीन अफ़ग़ानी के तरीक़े को

दोहराया जा रहा है। मुसलमान कहीं एक नाम से और कहीं दूसरे नाम से अपने शासकों के ख़िलाफ़ राजनीतिक लड़ाई में व्यस्त हैं, यहाँ तक कि आज 'इस्लामी दावत' का शब्द मुस्लिम शासकों के लिए राजनीतिक विपक्ष के समान बनकर रह गया है।

इसके कारण न केवल यह नुक़सान हुआ है कि इस्लामी दावत की मुहिम में मुस्लिम हुकूमतों का भरपूर सहयोग हासिल नहीं हो रहा है, बल्कि अगर कोई आदमी हुकूमत से अलग हटकर निजी तौर पर इस ज़िम्मेदारी को अदा करना चाहे तो हुकूमत उसे शक की निगाह से देखने लगती है और उसकी राह में रुकावटें डालती है।

ज़रूरत है कि मुस्लिम शासकों से राजनीतिक संघर्ष को पूरी तरह से ख़त्म कर दिया जाए, चाहे वह इस्लाम के नाम पर हो या किसी और के नाम पर; ताकि हर मुस्लिम देश में इस्लामी कार्यकर्ताओं को उनके राष्ट्रीय शासन का सहयोग प्राप्त हो और इस्लाम के पुनरुत्थान (revival) का काम बड़े पैमाने पर शुरू किया जा सके; ग़ैर-मुस्लिमों में इस्लाम का संदेश पहुँचाने के लिए भी और ख़ुद मुसलमानों के अपने निर्माण और सुधार के लिए भी।

कार्यकर्ताओं का इकट्ठा होना

इस्लामी दावत की ज़िम्मेदारी को अदा करने और मौजूदा मौक़ों को इस्तेमाल करने के लिए काम करने वाले लोगों की ज़रूरत है। क़ुरआन में हुक्म दिया गया है कि मुसलमानों में से कुछ चुनिंदा लोग विशिष्ट प्रशिक्षण के द्वारा इस उद्देश्य के लिए तैयार किए जाएँ। वे इस्लाम की गहरी समझ हासिल करके अलग-अलग क़ौमों में जाएँ और उन्हें एकेश्वरवाद का संदेश दें और परलोक से सचेत करें (9:122)।

आज दुनिया में मुसलमानों के अनगिनत मदरसे और शिक्षण संस्थान हैं, मगर पूरी दुनिया में कोई एक मदरसा भी विशेष रूप से इस उद्देश्य के लिए मौजूद नहीं, जहाँ सिर्फ़ इस्लामी दावत की ज़रूरत के तहत लोगों को शिक्षा-दीक्षा दी जाए, ताकि वह वक़्त की ज़रूरत के अनुसार तैयार होकर प्रभावी शैली में लोगों को ईश्वर और परलोक से आगाह करें। आज की सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि एक ऐसा शिक्षण संस्थान स्थापित किया जाए और उसे मापदंड के अनुसार बनाने के लिए हर वह क़ीमत अदा की जाए, जो मौजूदा

हालात में ज़रूरी है।

कार्यकर्ताओं के सिलसिले में सबसे अहम बात यह है कि उन्हें केवल 'ज्ञानी' नहीं, बल्कि 'उद्देश्यपूर्ण' होना चाहिए। उद्देश्य के बिना ज्ञान सिर्फ़ जानकारी है, लेकिन जब ज्ञान उद्देश्य के साथ हो तो वह मआरिफ़त* बन जाता है। अगर एक ऐसा शिक्षण संस्थान स्थापित हो जाए, जहाँ डिग्रीधारक टीचर्स के द्वारा लोगों को प्राचीन व आधुनिक विद्या पढ़ाई जाए तो केवल इस आधार पर वे अपेक्षित निमंत्रणकर्ता नहीं बन जाएँगे। ज़रूरी है कि उनके दिल में उद्देश्य की आग लगी हुई हो, क्योंकि उद्देश्य ही लोगों के अंदर वह उच्च विचार और उच्च चरित्र पैदा करता है, जिसके द्वारा दावत के मैदान में अपनी ज़िम्मेदारी को अदा किया जा सके।

चाहे कोई सांसारिक उद्देश्य हो या धार्मिक उद्देश्य, दोनों के लिए ही ऐसे लोगों की ज़रूरत है, जो एक उच्च उद्देश्य के लिए हर तरह की ज़रूरी क़ुर्बानी दे सकें।

'द टाइम्स' (The Times) लंदन का एक पुराना अख़बार है। इस अख़बार में सन 1900 में एक विज्ञापन छपा। इस विज्ञापन के साथ न औरतों की तस्वीरें थीं और न ही किसी तरह के बनावटी तमाशे। इसमें एक छोटे से चौखटे में निम्नलिखित शब्द दर्ज थे—

> "एक जोख़िम भरे सफ़र के लिए आदमियों की ज़रूरत है। साधारण राशि, सख़्त सर्दी, गहरे अँधेरे के लंबे महीने, लगातार ख़तरा, सुरक्षित वापसी संदिग्ध। सफलता के रूप में सम्मान व स्वीकृति।"
>
> "Men wanted for a hazardous journey. Small wages, bitter cold, long months of complete darkness, constant danger, safe return doubtful. Honour and recognition in case of success." Sir Ernest Shackleton.

यह विज्ञापन दक्षिणी (Antarctica) अभियान के लिए था। इसके जवाब में इतने अधिक पत्र आए कि ज़िम्मेदारों को इनमें से चयन करना पड़ा। इसी तरह के उच्च साहस वाले लोग थे, जो पश्चिम में वैज्ञानिक क्रांति लाए और पश्चिमी लोगों के लिए विश्व-नेतृत्व का रास्ता साफ़ किया।

---

* ईश्वर की अनुभूति।

ऊपर दिया गया उदाहरण एक सांसारिक उदाहरण था। यही मामला उन लोगों का भी है, जिन्होंने इस्लाम का इतिहास बनाया। उक़बा घाटी की दूसरी बैत* के मौक़े पर मदीने के लोगों के प्रतिनिधियों की बातचीत इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसी तरह के जागरूक और साहसी, पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद के साथी थे, जिन्होंने इतिहास में अनेकेश्वरवाद की निरंतरता को ख़त्म किया और मानव इतिहास की दिशा को बदल दिया। आज दोबारा उसी इतिहास को दोहराने की ज़रूरत है, जो इतिहास हमारे पूर्वजों ने अपने दौर में रचा था। उन्होंने अनेकेश्वरवाद का दौर ख़त्म करके एकेश्वरवाद का दौर शुरू किया। अब हमें नास्तिकता का दौर ख़त्म करके दोबारा एकेश्वरवाद का दौर मानव इतिहास में लाना है। यह एक बहुत ही बड़ा काम है और इसके लिए बड़े लोगों की ज़रूरत है। आज के दौर में यह ज़रूरी है कि एक ऐसा संस्थान स्थापित किया जाए, जहाँ शिक्षा व प्रशिक्षण के द्वारा ऐसे लोगों को तैयार किया जाए। डॉक्टर फ़िलिप के० हिट्टी के शब्दों में, "आज इस्लाम को दोबारा एक नर्सरी ऑफ़ हीरोज़ (nursery of heroes) की ज़रूरत है। इसके बिना यह अहम काम अंजाम नहीं दिया जा सकता।" कथित शिक्षण संस्थान मानो इसी तरह की एक नर्सरी होंगे, जहाँ इस्लामी दावत के हीरो तैयार किए जाएँ।

दावती केंद्र की स्थापना

ऊपर मैंने डॉक्टर निशिकांत चट्टोपाध्याय का वर्णन किया है। उन्होंने सन 1904 हैदराबाद में अपने एक भाषण में कहा था—

> I feel sure that if a comprehensive Islamic Mission were started in Hyderabad (India) to preach the simple and sublime truths of Islam to the people of Europe, America and Japan, there would be such rapid and enormous accession to its rank as has not been witnessed ever since the first centuries of the Hijra . Will you, therefore, organise a grand central Islamic Mission here in Hyderabad and open branches in Europe, America and in Japan?

---

* अपनी इच्छा से किसी का नेतृत्व स्वीकार करना और उसकी आज्ञा का पालन करना।

Why have I Accepted Islam, Dr Nishikant Chttopadhyay

"मुझे विश्वास है कि अगर हैदराबाद में एक बड़ा इस्लामी मिशन शुरू किया जाए, जिसका उद्देश्य इस्लाम की साफ़ और सादा सच्चाइयों का प्रचार करना हो और इसे यूरोप, अमेरिका और जापान के लोगों तक पहुँचाया जाए तो इस्लाम इतनी तेज़ी से और बड़ी सतह पर फैलेगा, जिसका उदाहरण पहली शताब्दी हिजरी के बाद दोबारा नहीं देखा गया। क्या आप लोग इस्लामी मिशन का एक बड़ा केंद्र हैदराबाद (भारत) में बनाएँगे जिसकी शाखाएँ यूरोप, अमेरिका और जापान में हों?"

(स्पष्ट है कि हैदराबाद का शब्द यहाँ केवल संयोग है। इससे मतलब कोई भी उचित शहर है, न कि हैदराबाद।)

एक सौभाग्यशाली मुस्लिम आत्मा ने 80 वर्ष पहले यह बात कही थी, लेकिन दुर्भाग्य से अभी तक यह घटना अंजाम तक न पहुँच सकी। आज की सबसे अहम ज़रूरत यह है कि एक ऐसा बड़ा दावती केंद्र स्थापित किया जाए, जो सभी आधुनिक संसाधनों से लैस हो। जहाँ हर तरह के ज़रूरी दावती और प्रशिक्षण के विभाग स्थापित हों और इसी के साथ वह हर तरह की राजनीति और हर तरह के क़ौमी झगड़ों से अलग होकर काम करे। एक बड़े दावती केंद्र के साथ अगर यह चीज़ें जमा कर दी जाएँ तो विश्वास है कि इस्लाम का वह नया इतिहास दोबारा बनना शुरू हो जाएगा, जिसका हम एक लंबे वक़्त से इंतज़ार कर रहे हैं, लेकिन वह अभी तक सामने न आ सका।

नोट :- यह लेख अरबी भाषा में अल-जामियातुल इस्लामिया (मदीना, सऊदी अरब) के 'अल-क़ाअतुल कुब्रा' में 2 मार्च, 1984 को पढ़कर सुनाया गया।

अंतिम शब्द

“वे चाहते हैं कि ईश्वर की रोशनी को अपनी फूँक से बुझा दें, हालाँकि ईश्वर अपनी रोशनी को कमाल तक पहुँचाए बिना मानने वाला नहीं।”

(क़ुरआन, 9:32)

अनादि सत्यता

मूसा, पंद्रहवीं शताब्दी ईसा पूर्व मिस्र में पैदा हुए। उन्हें ईश्वर ने अपना पैग़ंबर नियुक्त किया। उस समय मिस्र में एक अनेकेश्वरवादी ख़ानदान का शासन था, जो अपने आपको फ़िरऔन कहते थे। मूसा को इस ख़ानदान के दो राजाओं से सामना करना पड़ा। एक वह, जिसे ईश्वर ने बचपन में आपकी परवरिश का ज़रिया बनाया। दूसरा वह, जिससे आपका मुक़ाबला हुआ।

मूसा ने जब मिस्र के फ़िरऔन के सामने सत्य का संदेश प्रस्तुत किया तो वह आपका विरोधी हो गया। मूसा ने लाठी से साँप बन जाने का चमत्कार दिखाया तो उसने कहा कि यह जादू है और ऐसा जादू तो हम भी दिखा सकते हैं। फ़िरऔन ने हुक्म दिया कि अगले राष्ट्रीय मेले के अवसर पर मिस्र के सारे जादूगरों को इकट्ठा किया जाए। वे अपने जादू का कमाल दिखाकर मूसा के चमत्कार को झूठा साबित करें। इस तरह निर्धारित समय पर देश के सारे जादूगर इकट्ठे हो गए। मूसा जब मैदान में आए तो उस समय उन्होंने एक भाषण दिया। उस भाषण का एक हिस्सा इस तरह है—

> “जो कुछ तुम लाए हो, वह जादू है। ईश्वर निश्चित ही इसे झूठा साबित कर देगा। निःसंदेह ईश्वर उपद्रवियों के काम नहीं बनने देता और ईश्वर अपनी बातों से सच को सच साबित कर देता है, चाहे अपराधी लोगों को यह कितना ही नागवार हो।” (क़ुरआन, 10:81-82)

मूसा ने उस समय जो कहा, वह हक़ीक़त में पैग़ंबर की ज़ुबान से ईश्वर के अनंत फ़ैसले का ऐलान था। मौजूदा दुनिया में इम्तिहान की आज़ादी है, इसलिए यहाँ हर

झूठ को उभरने का अवसर मिल जाता है; लेकिन यह उभार हमेशा वक़्ती होता है। दुनिया की व्यवस्था इतनी पूर्ण और उच्चतम है कि वह ज़्यादा देर तक झूठ को स्वीकार नहीं करती। सत्य के विरुद्ध वह हर बात को एक समय के बाद रद्द कर देती है और आख़िरकार जो चीज़ बची रहती है, वह वही होती है, जो सत्य है।

ईश्वर का यह क़ानून पिछले ज़माने में भी सामने आया और मौजूदा ज़माने में भी ऐसा हो रहा है। मूसा के ज़माने में चमत्कार के द्वारा जादूगरों के जादू को झूठा साबित किया गया था। पिछले ज़माने में यह घटना बार-बार एक या दूसरे रूप में सामने आती रही है। मौजूदा दौर में स्वयं मानव ज्ञान के द्वारा ईश्वर ने इस उद्देश्य को प्राप्त किया है। क़ुरआन के अवतरण के बाद के दौर में इस सिलसिले में जो कुछ होने वाला था, उसका वर्णन क़ुरआन की निम्नलिखित आयत में है—

> "हम बहुत जल्दी उनको अपनी निशानियाँ दिखाएँगे— कायनात में भी और इंसान के अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर स्पष्ट हो जाएगा कि यह (क़ुरआन) सत्य है। क्या तुम्हारे रब की यह बात काफ़ी नहीं कि वह हर चीज़ को देखने वाला है।"

व्याख्याकार (commentator) इब्ने-कसीर ने इस आयत की व्याख्या इन शब्दों में की है—

> "बहुत जल्दी हम क़ुरआन के सत्य और ईश्वर की ओर से पैग़ंबर-ए-इस्लाम पर अवतीर्ण होने को बाहरी सबूतों के ज़रिये उनके लिए स्पष्ट कर देंगे।"

क़ुरआन की कथित आयत को स्थायी पृष्ठभूमि में देखना चाहिए। यह मानो एक ऐसी हस्ती बोल रही है, जिसके सामने वक़्त के इंसान भी हैं और भविष्य में पैदा होने वाले इंसान भी— यह आयत समय के संबोधितों के साथ अगली पीढ़ी को समेटते हुए कह रही है कि आज जो बात ईश-ज्ञान (revelation) के आधार पर कही जा रही है, वह आगे स्वयं मानवीय ज्ञान के ज़ोर पर सही साबित होगी। जो चीज़ आज सूचना है, वह कल घटना बन जाएगी।

क़ुरआन की यह आगामी सूचना बाद के दौर में पूरी तरह से सही साबित हुई है। पुराने ज़माने में जब जादूगरों ने सच के मुक़ाबले में जादू को खड़ा किया तो ईश्वर ने उसको ढहा दिया। मौजूदा दौर में ज्ञान के बल पर नास्तिकता और इनकार का दावा खड़ा किया गया तो उसको भी ईश्वर ने धूल बनाकर हवा में बिखेर दिया। इसी प्रकार जिसने भी कोई चीज़ सच के ख़िलाफ़ खड़ी की, वह हमेशा ढहा दी गई। पुराने ज़माने से लेकर मौजूदा ज़माने तक कभी इसमें कोई अंतर नहीं पड़ा। ईश्वर का कथन अपनी सत्यता को लगातार बनाए हुए है।

शब्दावली

पैग़ंबर : ईशदूत; ईश्वर द्वारा नियुक्त व्यक्ति, जिसने ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाया।

क़यामत : सृष्टि के विनाश और अंत का दिन।

आयत : क़ुरआन की सबसे छोटी इकाई, श्लोक, इसका शाब्दिक अनुवाद निशानी या संकेत है।

शिफ़ा : इलाज, चिकित्सा, रोग का इलाज करने की ताक़त।

ईमान : ईश्वर द्वारा उसके पैग़ंबर के ज़रिये भेजे गए संदेश पर दृढ़ विश्वास।

आख़िरत : परलोक; मौत के बाद आने वाली दुनिया।

वह्य : ईश्वर का फ़रिश्ते जिब्राईल द्वारा पैग़ंबर को भेजा गया संदेश।

सजदा : सम्मान और समर्पण के भाव से माथा टेकना।

हदीस : हज़रत मुहम्मद के कथन, कर्म एवँ मार्गदर्शन।

फ़ितना : फ़साद, उपद्रव, विद्रोह।

सुन्नत : तरीक़ा; पद्धति; वह काम जो हज़रत मुहम्मद ने किया हो।

रिवायात : वह कड़ियाँ जिनके द्वारा पैग़ंबर की बातें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचीं।

मोमिन : सच्चे हृदय से ईश्वर की उपासना एवं उसके आदेशों का पालन करने वाला व्यक्ति।

मसाइल : इस्लामी धर्मशास्त्र संबंधी आदेश,पेचीदा मामले, समस्याएँ।

मेसोपोटामिया : प्राचीन सभ्यता जो टाइग्रिस और यूफ्रेटिस नदी के बीच मौजूदा इराक़ और कुवैत के हिस्से में 3500-1500 ई० में आबाद थी।

कुफ्र : ईश्वर के अस्तित्व का इंकार करना।

शफ़ाअते-कुब्रा : किसी के पक्ष में अनुग्रह करना।

मआरिफ़त : ईश्वर की अनुभूति।

बैत : अपनी इच्छा से किसी का नेतृत्व स्वीकार करना और उसकी आज्ञा का पालन करना